THE BOOK WAS DRENCHED

TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180052
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 85/P94E. Accession No. H 2344

Author प्रियदर्शिन.

Title इतिहास और कल्पना. 1954.

This book should be returned on or before the date last marked below.

इतिहास और कल्पना

[भारतीय साहित्य के तीन ऐतिहासिक उपन्यासों का संक्षिप्तीकृत रूपान्तर]

- पाटन का प्रभुत्व
- ऊषा काल
- आनन्द मठ

सम्पादक :

प्रियदर्शन, एम. ए.

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० लि०

पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता

आगरा

प्रकाशक :
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० लि०
हस्पताल रोड, आगरा ।

दो शब्द

'इतिहास और कल्पना' तीन भिन्न भाषाओं के तीन श्रेष्ठ उपन्यासों के अनूदित संक्षिप्तीकरणों का संग्रह है। 'पाटन का प्रभुत्व' गुजराती के उपन्यासकार कन्हैयालाल मुंशी की कृति है; 'उषाकाल' मराठी की कृति है, जिसके लेखक हरिनारायण आप्टे हैं और 'आनन्द मठ' बंगाली का श्रेष्ठ उपन्यास है, जिसे बंकिमचन्द्र चटर्जी ने लिखा है। तीनों की कथाएं तीन भिन्न भाषाओं की तो हैं ही, साथ ही उनका सम्बन्ध भारतीय इतिहास के तीन भिन्न कालों और क्षेत्रों से है। तीनों में अपने-अपने साहित्य, समाज और संस्कृति का स्वर स्पष्ट सुन पड़ता है।

इस प्रकार के प्रयास की उपयोगिता बिना बताये भी स्पष्ट है। हिन्दी आज राष्ट्रभाषा है, हिन्दी का अपना सम्पन्न साहित्य है, किन्तु मात्र यही राष्ट्र-साहित्य नहीं है। यह उचित है कि विभिन्न क्षेत्रों और भाषाओं का साहित्य हिन्दी द्वारा--राष्ट्रभाषा द्वारा अभिव्यक्ति पाये। एक और भी बात है। गणराज्य के विभिन्न गणों के बीच आत्मीयता का वातावरण बने और विकसित होता रहे, यह राष्ट्रीय एकता के लिए नितान्त आवश्यक है। इस आत्मीयता की स्थापना और स्थिरता तभी सम्भव है, जब एक दूसरे गणों के मन और मस्तिष्क, जो उनके कला और जीवन में प्रकट होते हैं, आपस में परिचय और पारस्परिकता बनाये रखने के लिए किसी सामान्य और स्वीकृत माध्यम के द्वारा एक दूसरे को सुलभता से उपलब्ध हो सकें। राष्ट्र वीणा है, गण उसकी तंत्रियाँ हैं, जिनके अपने-अपने स्वर हैं। रागिनी तो तभी निकलेगी जब सारे स्वर परस्पर सधे हों,

नहीं तो सब बेसुरा हो जायगा। यह राष्ट्रीय स्वर-साधना तभी सम्भव है, जब अपने-अपने अलग-अलग स्वरों की रक्षा करते हुए भी सभी तंत्रियाँ राष्ट्र-वीणा को सार्थक करें। 'इतिहास और कल्पना' जैसा प्रयास एक के साहित्य, समाज, संस्कृति को दूसरे तक पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया है।

तीनों कथाएँ सुप्रसिद्ध हैं, उनके बारे में विशेष क्या कहा जाय। तीनों कथाएँ अपने-अपने समय और क्षेत्र के पतनोन्मुख समाज को नवीन उद्बोधन और शक्ति देने के प्रयत्नों की कहानी हैं। तीनों के तिथि और नाम इतिहास-सिद्ध हैं, किन्तु तीनों के जड़ शरीर में प्राणों का संचार कलाकार की कल्पना ने किया है। 'इतिहास और कल्पना' नाम इसीलिए मुझे सरस जान पड़ा। तीनों में अपने विशिष्ट आदर्श हैं, जीवन के अपने मापदंड (values) हैं। इन्हीं सब में तो भारतीय संस्कृति की झाँकी मिलती है।

श्रीमान् कन्हैयालाल मुंशी, राज्यपाल उत्तर प्रदेश ने मुझे इस प्रयास में उत्साहित किया है। मैं सश्रद्धा आभार-विनत हूँ। सावित्री सिंह और सीता तथा गोरा तिवारी ने पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में बड़ा काम किया है। वे मेरे स्नेह के विशेष पात्र हैं।

१–६–५३.

प्रियदर्शन, एम० ए०

प्रेरणामयी 'क्षितिमानसी' को

आभार

"इतिहास और कल्पना" का दूसरा संस्करण प्रस्तुत है, इसकी सार्थकता इसी से सिद्ध है कि इतने शीघ्र दूसरे संस्करण का अवसर आ गया। इसे उपयोगी मान कर माध्यमिक शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड अजमेर ने इसे इण्टरमीडियेट कक्षाओं के लिए पाठ्य-ग्रन्थ नियत किया है, मैं कृतज्ञ हूँ।

मुझे आशा है कि इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार होगा।

. १-६-५४. प्रियदर्शन, एम.

विषय सूची

१.	पाटन का प्रभुत्व	... ...	१
२.	ऊषा काल	... ...	४८
३.	आनन्द मठ	... ...	१०५

पाटन का प्रभुत्व

गुजरात के वैभव पर अन्धकार, विस्मरण और पराधीनता के अनेक स्तर चढ़ गये हैं। यद्यपि आज गुजरात की भूमि पर नीरव शान्ति छाई हुई है तथापि किसी समय इसी भूमि पर इतिहास की घटनायें घटित हुई हैं। अकाल के मारे हुये इन्हीं खेतों की परिपूर्ण फसल ने, नाममात्र को अवशेष इन्हीं वनों की गहरी हरियाली ने और सूखी हुई सरिताओं के उछलते हुये जल ने किसी समय कुछ और ही जीवन देखा था, विजयी वीरों की रण-गर्जना सुनी थी, सत्ता और भक्ति के भावों का अनुभव किया था। गुजरात एक महावृक्ष है। उसकी जड़ में भगवान श्रीकृष्ण का कर्मयोग छिपा हुआ है, उसकी डालियों पर महाकवि नर्मद और महात्मा गाँधी की कोमल कोपलें फूटी हैं।

मध्यकाल में गुर्जर साम्राज्य की नींव डालने वाला मूलराज सोलंकी था। उसने अपने अकथ शौर्य और प्रताप के कार्यों द्वारा समस्त भारतवर्ष में अनहिलवाड़ पाटन का नाम प्रसिद्ध कर दिया था। वृद्धावस्था में उनकी धार्मिक वृत्ति बढ़ गई, इसका प्रभाव उनके पुत्र चामुण्ड तथा पौत्र दुर्लभसेन पर भी पड़ा। साम्राज्य के स्वप्न नष्ट हो गये। पाटन के नरेश स्वतंत्र, पर सत्ताहीन हो गये।

जब दुर्लभसेन के भाई नागराज का युवा पुत्र भीमदेव सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, उस समय देश की स्थिति बहुत खराब थी। मूलराज की राजनीति के कारण लोग बहुत धनी और स्वच्छंद हो गये थे। राजपूत लूट-खसोट द्वारा अपनी सत्ता

बढ़ाते तथा अपने को शूरवीर समझते थे। इसी समय गजनी के बादशाह की आकांक्षा का ज्वालामुखी भारत के भाग्य के विपरीत फूट पड़ा। उसके लावा की ज्वालाओं ने पाटन को जला डाला, सोमनाथ को भूमिसात् कर दिया। गुजरात परतन्त्रता के शिकंजे में जकड़ गया। भीमदेव ने कंथकोट (कच्छ) जाकर अपने प्राणों की रक्षा की।

मुहम्मद गजनी के पीठ फेरते ही उसने अपने अथाह शौर्य और साहस द्वारा योद्धाओं को एकत्रित कर, उनमें स्वदेश-प्रेम, स्वातंत्र्य-प्रेम जाग्रत कर पाटन को पुनः अपने अधिकार में कर लिया। श्रावकों को राजपूत राजाओं के संरक्षण में निर्भय व्यापार करने की आदत थी। यवनों के नृशंस अत्याचार से वे त्रस्त थे। उन्होंने भी भीमदेव की सहायता की। भीमदेव जैसा शूरवीर था, वैसा कूटनीतिज्ञ न था। इस कारण नगरसेन और दण्डनायक विमलमंत्री ने उसकी इस विवशता का अनुचित लाभ उठा कर पाटन छोड़ चन्द्रावती बसाई। विमलमंत्री धन के मद में चूर था। बहुत से धनी व्यापारी भी वहाँ जा बसे और चन्द्रावती एक राजतन्त्र बन गया। पंचायत के द्वारा वहाँ का राज्य-कार्य चलने लगा। पाटन के आधीन होते हुये भी चन्द्रावती स्वाधीन थी। भीम विमलमंत्री से मैत्री निबाहे रहा। उसकी सहायता से वह मालव राज की महत्त्वाकांक्षा को दबाये रखने में समर्थ हुआ। आस-पास के राजा जागीरदार स्वतन्त्र थे, वे मण्डलेश्वर कहलाते तथा स्वतंत्र शासन करते थे और पाटन की प्रभुता नाममात्र को स्वीकार करते थे।

जैन और राजपूतों में बहुत वैमनस्य रहता था। वे प्रायः परस्पर झगड़ते रहते थे। राजा को दोनों पक्षों को संभालने में अपूर्व कौशल का परिचय देना पड़ता था। भीम के

वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करने पर उनकी प्रथम वणिक स्त्री के पुत्र क्षेमराज ने राज्य स्वीकार नहीं किया; परन्तु अपने पुत्र देवप्रसाद के लिये देहस्थली का प्रान्त माँग लिया था। द्वितीय पत्नी राजपूत थी। उसका पुत्र कर्णदेव सिंहासनारूढ़ हुआ। वह शौकीन तथा उदारहृदय था, गम्भीर न था। उसने कर्णावती स्थापित कर वहाँ सुन्दर और विशाल महल बनवाये। क्षेमराज का पुत्र राजा भीमदेव की प्रतिमूर्ति था। शौर्य, पराक्रम, सरलता तथा प्रताप का अवतार था। आसपास के मण्डलेश्वरों को परास्त कर उनका शिरोमणि बन गया था। वे आन्तरिक रूप से देवप्रसाद को भीमदेव के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे, ताकि सोने का सूर्योदय एक बार पुनः हो जावे। चन्द्रावती के श्रावक पाटन के प्रति अनुराग होने के कारण वहाँ वापस आ गये थे।

कर्णदेव की शादी चन्द्रपुर की कुमारी मीनलदेवी के साथ हुई थी। मुञ्जाल मेहता जो कि नगरसेठ तथा दण्डनायक थे, रानी मीनलदेवी के बाल्यावस्था के मित्र थे। उनके प्रयत्न से ही राजा कर्णदेव की वहाँ शादी हुई थी। मीनलदेवी तथा राजा कर्णदेव में परस्पर वैमनस्य हो गया था। राजा ने मीनलदेवी को छोड़ दिया था, परन्तु मुञ्जाल मेहता के प्रयत्न से दोनों में परस्पर मेल हो गया। इस के बाद राजकुमार जगदेव का जन्म हुआ। मीनलदेवी जैन थी। उनका मंत्री मुञ्जाल मेहता जैन था। राजा पर इनका प्रभाव था। इस कारण जैनियों की परिस्थिति जरा विचित्र हो गई देवप्रसाद ने प्रथम खोज की, अन्त में लाचार होकर देवस्थली चला गया। मुञ्जाल एक तो राजा कर्णदेव के कारण, दूसरे देवप्रसाद की वीरता के कारण उसे परास्त कर दबा न सका। राजा कर्णदेव की मृत्यु का समय निकट था। परिस्थिति गम्भीर थी। सब सोचते थे कि "अब क्या होगा ?"

संवत् ११५० की ग्रीष्मकालीन संध्या थी। वातावरण शान्त परन्तु भयावना था। सप्तमी का चाँद धीरे-धीरे अपनी किरणों से पृथ्वी को चंद्रिका के प्रकाश से प्रकाशित कर रहा था। इसी समय दो घुड़सवार तेजी से पाटन की ओर जा रहे थे। मार्ग सूना तथा भयावना था। आगे का सवार तेजस्वी तथा प्रचण्ड था। वह राजपूती पोशाक में था। घोड़ा हवा मे बातें करता दौड़ रहा था। पिछला सवार सत्रह वर्षीय चंचल परन्तु रूपवान् था। उसका पहिनावा भी प्रथम सवार के सदृश्य था। प्रथम सवार अशान्त-सा प्रतीत होता था। वातावारण की मोहक शान्ति उसे आकृष्ट न कर सकी। मार्ग के पास मे एक पगडण्डी देख दोनों सवार उसी से आगे बढ़े। ये देवप्रसाद तथा उसका पुत्र त्रिभुवन थे। कुछ देर में सकरी पगडण्डी चौड़ी हो गई। घुड़सवार विचारों के प्रवाह में इधर-उधर देखे बिना सरपट भाग रहा था कि अगले सवार का घोड़ा लड़खड़ा गया और सवार सहित नीचे गिर पड़ा। सवार सामने एकटक देख रहा था। गिरकर भी वह चोट की पीड़ा को भूल सामने पत्थर की ओर देखने लगा। उसने वहाँ एक शुभ्र-वसना मलिन-वदन सुन्दर रमणी की आकृति देखी, वह उसे पहिचान कर एकदम पत्थर की ओर झपटा, परन्तु वहाँ कोई न था। "यह कैसा भ्रम है भगवान् ?" कह कर वह बुदबुदा उठा। उसका हृदय असह्य वेदना से भर गया। अज्ञात भय से कंपकँपी-सी आ गई। इतने में त्रिभुवन आ पहुँचा। देवप्रसाद ने किसी प्रकार अपने को संभाल लिया तथा सिर्फ घोड़े के लड़खड़ाने का कारण बतलाया। चंचल-चित्त पिता की व्यथा को पहिचान गया। दोनों चले जा रहे थे कि पीछे से एक ग्रामीण ने उन्हें सही रास्ता बतलाया। देवप्रसाद ने त्रिभुवन से कहा कि "बेटा, यदि पाटन का दरवाजा बंद हो गया तो मुश्किल है।"

फिर कहा कि "वह यति जो रास्ते में मिला था, अब पहुँच गया होगा।"

पाटन के दरवाजे के निकट पहुँचने पर दोनों अन्दर गये। अन्दर पहुँचने पर देवप्रसाद त्रिभुवन को अपने ठहरने के स्थान पर जाने को कह, स्वयं राजमहल की ओर अकेला ही गया। राजमहल पहुँच कर राजपूत सरदार ने एक खिड़की के दरवाजे को धीमे से खटखटकाया तथा एक कुन्दे से घोड़े को बाँध खिड़की लाँघ कर अन्दर जा पहुँचा। वह वहाँ के एक-एक स्थान से परिचित था। वहाँ जाकर समरसेन चोबदार द्वारा लीलाधर राज वैद्य के दामाद वाचस्पति को बुलवाया। वाचस्पति मण्डलेश्वर को देख कर घबड़ाया। मण्डलेश्वर ने कहा कि वे "काकाजी" अर्थात् कर्णदेव से मिलना चाहते हैं। वाचस्पति ने उनका राजपूती बाना उतरवा कर उन्हें वणिक वेशधारी बनवाया तथा दोनों कर्णदेव के कक्ष की तरफ चले। मार्ग में मीनलदेवी के मिलने के कारण वाचस्पति ने किनारे के कक्ष में देवप्रसाद को छिपा दिया। वहाँ झरोखे के पास उन्हें यति मिला। दोनों में काफी वाद-विवाद हुआ। परिचय में देवप्रसाद द्वारा अपना नाम देवीसिंह बतलाने पर यति ने हँसकर मण्डलेश्वर का प्रकृत नाम बतला दिया। यति ने राजा से कह दिया कि अब राजपूतों के दिन गये। राजा की मृत्यु के पश्चात् उन्हें अपनी स्थिति का पता चलेगा।

इस पर देवप्रसाद ने उसे खूब सुनाकर कहा कि मुझे अपने बाहु-बल का भरोसा पर्याप्त है। यति के जाने पर राजा अपनी चिन्ता में मग्न हो गया। वह शूरवीर था; सब सरदारों का मण्डलेश्वर था और पाटन को सब राज्यों का शिरोमणि बनाना चाहता था। परन्तु वह वर्तमान राजनीति के कारण क्षुब्ध था।

यति देवप्रसाद के पास से दूसरे छोर पर गया। वहाँ उसे रेणुका नाम की दासी मुञ्जाल मन्त्री के पास ले गई। मुञ्जाल मन्त्री

चतुर कूटनीतिज्ञ तथा शूरवीर मन्त्री था। उसकी हुण्डियाँ बगदाद और वेनिस तक चलती थीं। वह कुशल मन्त्री था। मालवराज उसे अपने राज्य का मन्त्री बनाने के हेतु अपार धन देने को तैयार थे, परन्तु वह स्वामिभक्त था। अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष की थी, उसका मुख सुन्दर था, आँखें तलवार की भाँति तीक्ष्ण थीं, शरीर सशक्त और सुगठित था, मस्तिष्क पर विस्तार की गौरवपूर्ण रेखायें झलकर ही थीं। यति की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डाल कर उसने नमस्कार किया। मुञ्जाल को देखते ही यति के मन में उसकी लोकप्रियता, उसका विशाल व्यापार, उसकी दृढ़ राजनीति, शत्रुओं के मुख से सुना जाने वाला उसका मीनलदेवी से सम्बन्ध—सब बातें तत्काल ही उपस्थित हुईं। यति चन्द्रावती से आया था। और सौभाग्य भाई का पत्र लाया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि यति उनके कार्य में सहायक हो सकता है। परन्तु मुञ्जाल मेहता ने उससे कहा कि वह पाटन के राजतन्त्र तथा चन्द्रावती को न लड़ावे, यही बहुत होगा। यति चौंक उठा, परन्तु अपने को सँभाल कर बोला कि वह महारानी से मिलेगा तथा कार्य न मिलने तक यहीं रहेगा। मुञ्जाल मेहता ने उसका विरोध किया क्योंकि वह चन्द्रावती के श्रावकों का प्रतिनिधि बन कर आया था। इसी समय उसने मुञ्जाल मेहता को देवप्रसाद के आने का भेद बतलाया। मुञ्जाल ने उससे अधिक उसका देवप्रसाद से मिलना, उनसे वार्तालाप इत्यादि कह सुनाया। सुनकर यति दंग रह गया। यति ने महारानी जी के सामने जाकर प्रणाम करने की इच्छा प्रकट की। मुञ्जाल उसे अपने साथ महारानी के पास ले गया।

पहिले मुञ्जाल गया, यति को बाहर ठहरा गया। यति उलझनों में डूबा हुआ था कि किस प्रकार मीनलदेवी को

प्रभावित कर वह अपने विचार सफल कर सकती है। जब मुञ्जाल आनन्दसूरि को छोड़कर अन्दर पहुँचा, तो उसने देखा कि मीनलदेवी माला जप रही थी। नेत्र लाल तथा मुख मलीन था। वयस करीब तीस वर्ष थी। उनका रूप साधारण और वर्ण श्याम था। मुञ्जाल ने मीनलदेवी को देवप्रसाद के आने का समाचार सुनाया। मीनलदेवी मुञ्जाल से क्षुब्ध थी। मुञ्जाल पर उसे पूर्ण विश्वास था कि उसकी सहायता से वह पूर्ण सत्ताधारिणी हो सकेगी, परन्तु पन्द्रह वर्ष के उपरान्त भी उसका स्वप्न सफल न हुआ। इसके लिये उसने मुञ्जाल मेहता और उसकी राजनीति की काफी भर्त्सना की। इस पर मुञ्जाल मेहता ने कहा कि जागीरदारों और मण्डलेश्वरों की सत्ता को निर्बल बनाकर, राजपूतों को नीचा दिखाकर श्रावकों को श्रेष्ठता देना सत्ता का द्योतक नहीं हो सकता। रानी ने उत्तर दिया—मुञ्जदेव, राज की नीति के अनुसार हमें भी सारे गुजरात राज्य के जागीरदारों को एक राज्य के आधीन करना होगा, तभी पाटन की प्रभुता बढ़ेगी, अन्यथा नहीं। मुञ्जाल ने कहा कि यदि उसे मंत्री के साथ-साथ दंड-नायक भी बना दिया जावे, तो वह बहुत कुछ कार्य करके दिखला सकता है परन्तु राजसत्ता में एकता नहीं है और देवप्रसाद सेनापति शत्रु है। शान्तिचन्द्र चन्द्रावती के पक्ष में हैं और वह यति की सूचना रानी को देकर जाने लगा। रानी ने मुञ्जाल से देवप्रसाद को कैद कर राजमहल में रखने को कहा, परन्तु मुञ्जाल "जो इच्छा हो कीजिये" कह कर क्रोधित-सा हो कर चला गया। आनन्दसूरि अन्दर आया।

× × ×

जब राजा देवप्रसाद त्रिभुवन को छोड़ कर चले गये थे, तो वह उनकी आज्ञा को भूल कर उसी मार्ग से जाने लगा। उसका

चित्त प्रफुल्लित था। पाटन उसके लिए मूर्तिमान् सुख के समान था। वह राजमहल के एक झरोखे के पास पहुँचा तथा दो-चार पत्थर बीन कर उस झरोखे पर मारे। प्रत्युत्तर में एक बाला ने दरवाजा खोला। वह प्रसन्न थी—मीनलदेवी की भतीजी। त्रिभुवन के ऊपर आने के लिये उसने रस्सी डाली। ज्योंही त्रिभुवन चढ़ने लगा, पहले उसने रस्सी की गाँठ ढीली कर दी, त्रिभुवन जमीन पर आ गिरा, बाद में वह ऊपर जा पहुँचा। पलक मारते त्रिभुवन झरोखे में से अन्दर गया। प्रसन्न उसे देख कर झूलने लगी और झूलते-झूलते भित्रवन के ऊपर कूदी। दोनों गिर पड़े और दोनों को कड़ी चोट आई। वार्त्तालाप के उपरान्त दोनों चारण बारहट जी को देखने गये। वह भीमदेव के समय का सम्मानित भाट था। वह उनके वीर, अशान्त शासन-काल का अडिग साथी था। आज नव्वे वर्ष की उम्र में उसकी आँखें जाती रही थीं। उसे प्रसन्न तथा त्रिभुवन से विशेष स्नेह था। उसके वर्त्तालाप से पता चला कि जो मालवराज पाटन के नाम से घबराया करता था, अब वही पाटन उसे रिश्वत देकर सन्तुष्ट करना चाहता है। त्रिभुवन ने पूछा "ये किस प्रकार भला ?"

बारहट जी ने कहा कि जब रनवास राज करने लगता है, तब इसके सिवा क्या हो सकता है ! स्त्रियों की बुद्धि पैर तले रहती है। अब यह प्रसन्न मालवराज को दे दी जावेगी। यह सुनते ही त्रिभुवन क्रोधित हो गया तथा प्रसन्न से पूछने लगा कि क्या तुम जाने को तैयार हो ? प्रसन्न ने कहा कि बुआजी समझा रही हैं। त्रिभुवन कह ही रहा था कि मीनलदेवी की क्या सामर्थ्य है कि तभी राजकुमार जयदेव आ गया। वह त्रिभुवन से पूछने लगा कि तुम कौन हो ? यहाँ कैसे आये ? त्रिभुवन पाल कह उठा कि जितना अधिकार तुम्हें है, उतना मुझे भी है। पिता के

गुप्तरूप से आने की याद आते ही वह चुपचाप तेजी से नीचे उतरा। प्रसन्न के रोकने पर उससे यह कह कर कि 'उज्जयिनी की रानी से मुझे क्या मतलब' वह चला गया।

मुञ्जाल के जाने पर यति आनन्दसूरि रानी मीनलदेवी के कक्ष में गया। मुञ्जाल मेहता कर्णदेव को देखने चले गये थे। यति ने रानी से 'धर्म-लाभ' कह प्रणाम किया। रानी ने आने का विशेष प्रयोजन पूछा। मुञ्जाल वहाँ नहीं थे, इसलिये यति प्रसन्न था। वह रानी से राजनीति की बातें करने लगा कि धर्म और जीवन अभिन्न हैं। राजनीति भी धर्म है। रानी को उसने अपने प्रभाव से प्रभावित कर लिया। उसने सम्राट् मुहम्मद गजनी का उदाहरण देकर जैन धर्म को राजनीति का प्रथम मन्त्र बनाने के लिये कहा तथा उसी के नाम पर उसके अनुयायियों में उत्साह और एकता प्रेरित कर देश-देश में जिन भगवान् का झण्डा फहराने की आकांक्षा प्रकट की। बात मीनल देवी के अनुकूल थी। उनकी भी इच्छा थी। रानी ने संदेह प्रकट किया कि फिर विमलमंत्री के समान श्रावक राजसत्ता पाकर पाटन को भी राजतन्त्र बना लेंगे। इस पर यति ने कहा कि चन्द्रावती ने जो सेना भेजी है, उस सेना का सेनापति मुञ्जाल को बना दीजिये। श्रावक लोग उसे ठिकाने से रक्खेंगे। शान्तिचन्द्र कुशल है, उसे पाटन का दुर्गपाल बनाइये, सम्भव हो तो दण्डनायक भी। उसके उपरान्त उन्होंने यति को विमल शाह के स्थानक से मोरी साहबी को गुप्त रूप से बुलाने के लिये वहाँ के आचार्य के पास भेज दिया।

बेचारा मण्डलेश्वर वाचस्पति की प्रतीक्षा करता हुआ झरोखे में इधर उधर टहल रहा था कि वाचस्पति आ पहुँचा। अरुणोदय का समय हो गया था। मण्डलेश्वर ने पुनः उसी स्त्री को देखा जो उन्हें घोड़े से गिरते समय दीखी थी। वह त्रिभुवन

की माँ थी। लीलाधर वाचस्पति के साथ मण्डलेश्वर के पास जा पहुँचा। लीलाधर वैद्य ने सबको संकेत से बाहर कर दिया। कर्णदेव ने देवप्रसाद से वचन ले लिया कि वह जयदेव को हानि न पहुँचावेगा तथा देवप्रसाद को बतला दिया कि हंसा जीवित है। इतने में मीनलदेवी आ गई। राजा उनके भय से शान्त हो गये। देवप्रसाद ने मीनलदेवी से पूछा। रानी ने धूर्ततापूर्वक बातें करनी शुरू कीं। उसने देवप्रसाद को दण्डनायक के पद का प्रलोभन दिया। कहा कि यदि वह उसे सोरठ और हालार का प्रान्त दे दे तो वह उसे दण्डनायक बना देगी। मण्डलेश्वर क्रोधित हो उठा। उसके मुख पर सिंह सदृश प्रताप छा गया। छाती ठोक-कर बोला, "काकी जी अपनी बुद्धि को अपने पास रखें। जब तक मण्डलेश्वर के शरीर में प्राण है, तब तक राजपूत वीरों को आधीन करने वाला किसकी माँ ने जना है? मैं देख लूँगा! जो राजनीति परम्परा से चली आ रही है देखूँ उसे कौन बदलता है?" इतना कह देवप्रसाद आवेश से उठ कर चला गया।

त्रिभुवन प्रसन्न के पास से हृदय को भारी किये पिता के आने के पूर्व घर आया। वह अपना तीर-कमान वहीं भूल आया था। देवप्रसाद भी वहाँ से सीधे यह सोचते कि "हंसा जीवित है" गृह पहुँचे। एक तरह से राजनीति के इस गम्भीर मौके पर हंसा के हृदय-विदारक विचारों ने उनके साहस को क्षीण कर दिया और बुद्धि की तेज धार कुछ कुण्ठित पड़ गई। पुत्र को उदास देख पिता ने समझाया कि अभी तुम्हें उदास होने का कोई कारण नहीं है। फिर उन्होंने त्रिभुवन के हठ करने पर राज्य के झगड़े का कारण बता दिया।

भीमदेव के तीन स्त्रियाँ थीं। प्रथम स्त्री के मूलराजदेव थे, द्वितीय के देवप्रसाद के पिता थे तथा तृतीय के कर्णदेव थे। देवराज के पिता क्षेमराज राज्याधिकारी होते हुये भी राज्य छोड़-

कर चले गये। कर्णदेव राजा बने। जब तक कर्णदेव की शादी मीनलदेवी से नहीं हुई थी, तब तक देवप्रसाद का प्रभाव था। वे सबके प्रियपात्र थे। मीनलदेवी के आते ही कर्णदेव उनके प्रभाव में आ गये। देवप्रसाद को देवस्थली जाना पड़ा। वे मानते थे कि पाटन का पति पूज्य होता है। फिर पाटनाधिपति देवप्रसाद के काका जी थे। इसी के कारण देवप्रसाद शान्त रहे परन्तु सोचा कर्णदेव की मृत्यु होते ही पाटन को हस्तगत करेंगे, मीनलदेवी कुछ न कर सकेगी। देवप्रसाद ने त्रिभुवन को बतलाया कि उसकी माता हंसा नगरसेठ मुञ्जाल की बहिन थी। हंसा ने भाई की इच्छा के विरुद्ध देवप्रसाद से शादी की थी। अतएव एक बार जब देवप्रसाद शिकार को गये थे मुञ्जाल मेहता ने मीनलदेवी के साथ षड्यन्त्र करके हंसादेवी को उड़ा लिया और यह घोषित कर दिया कि वह मर गई। परन्तु हंसा जीवित है, यह समाचार उन्हें स्वयं महाराज कर्णदेव ने दिया। इसी समय समाचार आया कि वल्लभसेन सेना लेकर मेरल तक आ गया है। सुन कर देवप्रसाद का हृदय निराशा से कुछ मुक्त हुआ। माता के जीवित होने का समाचार सुन त्रिभुवन उनके विषय में पूर्ण समाचार जानने के हेतु अपने मामा मुञ्जाल मेहता के पास गया। अपने पिता की अपेक्षा उसमें सांसारिक ज्ञान अधिक था। वह जानता था कि मुञ्जाल जैसे राजनीतिज्ञ के समक्ष अपने आपे में न रहना, तिरस्कृत होने के समान होगा। इस समय मुञ्जाल मेहता किसी से न मिलते थे। त्रिभुवन जब मुञ्जाल के गुमाश्तों के बैठने के स्थान पर पहुँचा, सब चौंक उठे। मुञ्जाल ने सुनते ही उसे बुला भेजा। त्रिभुवन को देखते ही हार्दिक स्नेह से मुञ्जाल ने हाथ बढ़ाकर कहा, "कौन, हंसा के त्रिभुवन ?" प्रणाम-कर त्रिभुवन नीचे बैठ रहा था कि मुंजाल ने उसे समीप बुलाया तथा आने का

कारण पूछा। त्रिभुवन ने कहा कि वह जननी की भीख माँगने आया है। मुञ्जाल ने यह कह कर बहलाना चाहा कि "हंसा स्वर्ग-वासिनी हो गई है", परन्तु त्रिभुवन न माना। उसे भ्रम हो रहा था कि पिताजी का कथन सत्य है या मामाजी का। मुञ्जाल ने उसे अपने पास रहने को कहा, परन्तु त्रिभुवन ने कहा कि जब आप पिताजी से सन्धि कर लेंगे, तभी आपके पास रहना सम्भव है, अन्यथा नहीं। फिर आपने मेरे पिताजी पर क्या अत्याचार नहीं किये, सिंह के समान अपने पिता का साथ छोड़ आपके पास नहीं रह सकता। मुञ्जाल को घातक, निष्ठुर इत्यादि शब्दों से भेदता वह चला गया। मुञ्जाल मेहता चुपचाप आँख पोंछता उठ खड़ा हुआ।

रास्ते में त्रिभुवन को प्रसन्न का भेजा हुआ धनुष-बाण मिला, वह शीघ्रता में भूल आया था। दासी से बाण लेकर वह पालकी पर चढ़ ही रहा था कि राजप्रसाद में कुहराम मच गया। त्रिभुवन वहाँ गया, जहाँ कर्णदेव को जमीन पर रख दिया गया था। जनता को आभास हो रहा था कि पाटन के सिर पर कोई भारी आपत्ति आने वाली है। खबर मिलते ही मण्डलेश्वर आ पहुँचा। उसने कर्णदेव के शव को प्रणाम किया। त्रिभुवन को देख कर पूछा कि कुछ पता चला या नहीं? त्रिभुवन ने नकारात्मक सिर हिलाया। इतने में एक राजपूत गलमुच्छोंको चढ़ाता हुआ आ पहुँचा। वह वीरपुर का सामन्त था। उसने पूछा,—"मण्डलेश्वर जी तैयार हैं?" परन्तु देवप्रसाद ने मुस्करा कर कहा कि विजय मल्ल जी अब पाटन का राजा जयदेव है और कोई नहीं। राजा कर्णदेव का अग्नि-संस्कार कर सब वापिस लौटे। लौटने पर मदनपाल देवप्रसाद से मिलने आया। वह कर्णदेव का मामा लगता था। उसने देवप्रसाद से कहा कि मीनलदेवी उसे वापिस न जाने देंगी, अत व जयदेव को रात्रि में गायब कर कर्णावती

में उसका राजतिलक कर दिया जावे। परन्तु देवप्रसाद ने स्वीकार नहीं किया। वह शौर्य के स्थान पर छल का पथ अपनाना नहीं चाहता था। फलत मदनपाल के विचार में वह सहमत न हुआ, अतएव मदनपाल वापिस लौट गया।

मुञ्जाल काफी रात्रि तक राज्य-व्यवस्था में व्यस्त रहा। प्रत्येक पक्ष में किस प्रकार की विचार-धारा चल रही है, यह उसे अपने गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हो जाता था, उसने समस्त समाचार सुन लिये थे। इसलिये सब स्थानों पर विश्वासपात्र मनुष्यों को नियत किया। सारे महल में कड़ा प्रबन्ध कर वह मीनलदेवी के पास गया। मीनलदेवी यति तथा शान्तिचन्द्र के साथ गुप्त सलाह कर रही थी, यह उसने सुन लिया था। मीनलदेवी ने सिर दर्द का बहाना किया, परन्तु मुञ्जाल ने यह कह कर कि अति आवश्यक कार्य है, उनसे इसी समय मिलना चाहा। मीनलदेवी के आने पर उसने उन्हें समझाया। परन्तु रानी ने कहा कि सब बातें शान्ति से की जावेंगी। वह उठ कर बाहर आया। वहाँ उसे वही यति मिला। उसने मुञ्जाल से कहा कि आप जैन सत्ता के प्रतिनिधि बनें तो तुरन्त दण्ड-नायक बन सकते हैं, परन्तु मुञ्जाल उसका तिरस्कार करता हुआ चला गया। इस समय उसे अपनी भगिनी, भानजे तथा पत्नी की याद आई, जो मीनलदेवी के कारण दैवी कोप के शिकार हुये थे। मुञ्जाल के मन में विमलमन्त्री के समान सत्ता का उपयोग कर, दूसरी चन्द्रावती बसाने की भावना उठी, परन्तु उसने उसे रोक लिया। मुञ्जाल अभिमानी था, सत्ता का शौकीन था, फिर भी उसकी आकांक्षा थी कि पाटन का प्रभुत्व समस्त गुजरात में—भारत में फैले। पौ फटते ही राजमहल में लोगों की भीड़ जमा हुई। उठावनी का दिन था। जल-दान के लिये कुमार जयदेव, शान्तिचन्द्र, यति, राजपुरोहित, देवप्रसाद तथा

मुञ्जाल इत्यादि जनता के साथ गये। सारा दल जब जल-दान करके लौट आया, तब सामन्त इत्यादि आकर चबूतरे पर बैठ गये। स्त्रियाँ झरोखे की खिड़कियों पर आ बैठीं। बीच में चबूतरे पर गद्दी लगाई गई, उस पर कुमार जयदेव बैठे। पास ही राजपुरोहित खड़े थे। दूसरी ओर होंठ दबाये सत्ता के अवतार मुञ्जाल मेहता खड़े थे। राजपुरोहित ने कुमार को तिलक किया और पिता की तलवार उसकी गोद में रख दी। यति इस प्रकार उठे जैसे कि वे भी तिलक करने जा रहे हैं। देवप्रसाद ने क्रोध से होंठ दबा लिये। जनता चौंक पड़ी। कारण, यह नई रीति केवल जैनियों के लिये सम्मानपूर्ण थी। राज-पुरोहित के उपरान्त नगरसेठ को राजतिलक करना था। अतएव यति के पहुँचने से पहिले ही मुञ्जाल मेहता ने बीच में आकर तिलक कर दिया। यति पीछे हट गया। सामन्त हँस पड़े। मुञ्जाल ने जय घोष किया "महाराजा जयदेव की जय!"

सभी लोगों ने जय घोष किया। इसके बाद जयदेव ने नये प्रबन्ध की घोषणा की। मुञ्जाल मंत्री को मधुपुर छावनी और चंद्रावती की सेना का सेनापति नियत किया। शान्तिचन्द्र मेहता को पाटन का दुर्गपाल तथा दण्डनायक नियुक्त किया। मुञ्जाल के अतिरिक्त सभी चौंक पड़े। शान्तिचन्द्र श्रावकों का कट्टर नेता था। सामन्त प्रसन्न थे। वे मुञ्जाल की कूटनीतिज्ञता तथा सत्ता से घबराते थे। देवप्रसाद भी खुश था। अब वह सरलता से श्रावकों को अपने हाथ दिखा सकेगा। अपमानित होने पर भी वह आशाओं से परिपूर्ण था। घर आने पर त्रिभुवन ने कहा कि मामा ने कहा है कि दोपहर को पाटन के दरवाजे बन्द हो जावेंगे। देवप्रसाद समझ गया यह उसे परास्त करने की चाल है। इसमें यति का हाथ है। इस प्रकार से वह मीनलदेवी द्वारा मुझे क्या मुञ्जाल को पंगु बनाना चाहता है। इसलिये भोजन करके

जाने की तैयारी करने लगा।

मीनलदेवी साहस के साथ मुञ्जाल और मण्डलेश्वर से भिड़ गई थी। उसने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। राजमहल के पहरेदारों से लेकर मेरल की सेना तक सब ओर अपना ध्यान रखने लगी। वह मुञ्जाल को चिढ़ा कर अपनी सत्ता की प्रभुता दिखलाना चाहती थी। जिस गुरु की शिक्षा के अनुसार अब तक चली थी, अब उसी को पाठ पढ़ाना चाहती थी। मुञ्जाल के प्रति किया गया अपना अन्याय उसे स्वयं खटक रहा था। इस अन्याय को मुञ्जाल अनुभव करे, यह देखने की प्रबल इच्छा उसे थी। वह मुञ्जाल की प्रतीक्षा में थी। सगरसेन को चुपचाप मुञ्जाल को देखने भेजा। उसने समाचार दिया कि मंत्री महाराज ने अभी-अभी हिसाब करके समस्त बहियाँ सेठजी के पास भेज दी हैं और मधुपुर जाने के लिये घोड़ा मंगवाया है। यह सुनकर मीनलदेवी स्थिर न रह सकी। वह उसकी इस कर्त्तव्यपरायणता की अपेक्षा उसका चिढ़ना देखना चाहती थी। मीनलदेवी का हृदय सदा बुद्धि के कवच के भीतर रहता था। उसमें मुञ्जाल के लिये जगह थी। उसने सगर द्वारा मुञ्जाल को बुला भेजा। मुञ्जाल मेहता ने प्रथम तो मना कर दिया, बाद में आये। वही रूप, वही गौरवपूर्ण मुख, वही चाल: सिर्फ आँखें भावहीन तथा सख्त थीं। आज्ञा के आधीन होने पर भी वे अपनी शक्ति का परिचय दे रही थीं। मुञ्जाल आकर हाथ में हाथ को पकड़ कर खड़ा हो गया। रानी ने पूछा, "मधुपुर जाकर क्या करोगे?" मुञ्जाल ने कहा, "जो दण्डनायक की आज्ञा होगी।" तथा यह कह कर चला गया कि रात्रि को यदि इस महल में मीनलदेवी रहेगी तो षड्यंत्रकारी कुमार जयदेव को उठा कर ले जावेंगे। थोड़ी दूर जाने पर देवप्रसाद से सामना हो गया। देवप्रसाद प्रथम खुद जाना चाहता था। मुञ्जाल

मेहता ने कहा—प्रथम नगरसेठ जावेगा। वाद-विवाद होते होते दोनों ने तलवार निकाल लीं। परन्तु अचानक त्रिभुवन बोल उठा, "साले बहनोई साथ-साथ जावेंगे।" इस भूले सम्बन्ध को सुनकर दोनों ने तलवार हटा लीं और त्रिभुवन की ओर देखने लगे। दोनों को उसके मुख पर उसकी माता की सुन्दर रेखायें दीख गईं। दोनों में मेल हो गया। देवप्रसाद ने पूछा, "हंसा जीवित है?" मुञ्जाल ने "हाँ कहा" तथा स्थान भी बतला दिया कि वह राजमहल के पीछे की मंजिल पर है। दोनों ने कल सूर्योदय के समय बाघेश्वरी देवी के मन्दिर में मिलने का वायदा किया। मुञ्जाल सैनिकों सहित चला गया। देवप्रसाद हंसा की खोज में लौट गया। त्रिभुवन वहीं रह गया। देवप्रसाद वहाँ पहुँचा, परन्तु हंसा न मिली। दूसरे ही क्षण मीनलदेवी सामने थी। हंसा को माँगने पर मीनलदेवी ने देवप्रसाद से नजर कैद होने को तथा समस्त मण्डल देने को कहा। सुन कर मण्डलेश्वर ने होठ चबा लिये तथा राजमहल से निकल गया।

मीनलदेवी ने मुञ्जाल का बतलाया मार्ग त्याग कर यति का दिखलाया मार्ग ग्रहण किया। उसके अनेक कारण थे। एक तो मीनलदेवी प्रतीक्षा करके हार गई थी, उसे ज्ञान नहीं था कि राजसत्ता को एकदम जमाना कितना कठिन है। दूसरे मुञ्जाल यद्यपि उसका बालसखा था, उसके प्रति बहुत स्नेह और सम्मान था परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता, उसकी राजनीति-पटुता, उसकी लोकप्रियता उसे अखरती थी। अभी तक मीनल का अस्तित्व मुञ्जाल के कारण था, अतएव अब वह अपनी बुद्धिमत्ता की छाप मुञ्जाल पर बिठा देना चाहती थी। एक कारण यति की शिक्षा और धार्मिक जोश भी था। उसके हृदय में यह भाव कि आशायें कि मुञ्जाल इस प्रकार मधुपुर जावेगा तो खोजेगा, उसका सामना करेगा और तब वह रिझायेगी-मनायेगी। परन्तु गौरव

का जो पट दोनों के बीच में मुञ्जाल ने डाला था, उससे वह अकुला गई।

रानी ने सोचा कि देवप्रसाद पाटन में बन्दी हो जावेगा, उसकी सेना सेरल में पड़ी रहेगी। चन्द्रावती की सेना की सहायता से वह देहस्थली में जाकर छावनी डालेगी अतएव देवप्रसाद भी ठिकाने आ जावेगा। रानी को युक्ति इतनी सरल प्रतीत हुई और सत्ता का स्वाद ऐसा मीठा लगा कि उसे अपने स्वप्नों के सत्य हो जाने का विश्वास हो गया।

शान्तु मेहता ने आने पर समाचार दिया कि पाटन के समस्त दरवाजे बन्द हैं, देवप्रसाद फँस जायगा। उसने कहा कि देवप्रसाद व मुञ्जाल मेहता मोती चौक में मिले थे, प्रथम तो दोनों में झगड़ा हुआ, बाद में मेल हो गया तथा कल प्रातःकाल बाघेश्वरी देवी के मन्दिर में मिलने की बात हुई है। सुनकर रानी घबड़ा गई। इसी समय लीलाधर वैद्य आ गये। उन्होंने आकर समाचार दिया कि जयदेव को कर्णावती ले जाने का षड्यंत्र रचा जा रहा है। रानी ने कहा कि "मैं जानती हूँ।" इतने में आनन्दसूरि भी आ गये। वे राजपूती वेश में थे। उन्होंने कहा कि जैसे ही मण्डलेश्वर राजमहल से उतरे, मैं वेश बदलकर उनके पीछे गया। उन्होंने घोड़ो दौड़ा दी। चाँपानेर का दरवाजा बन्द देख वे एक टीले से नगरकोट की दीवाल लाँघ गये। अतएव अब देवप्रसाद और मुञ्जाल मेहता अवश्य मिलेंगे। अब एक उपाय है कि यदि आप मधुपुरी जावें तो मुञ्जाल मेहता अवश्य रुक जावेंगे। दूसरे, चन्द्रावती से दूसरी सेना भी आ जावेगी।

शान्तु मेहता ने कहा कि आज ही संध्या को जाना उचित रहेगा, शान्तिचन्द्रजी दो दिन पाटन की रक्षा कर लेंगे। इतनी सलाह कर तीनों चले गये। रानी अकेली रह गई। सोचा, क्या

करूँ ? उसे हंसा की याद आई। उसने हंसा द्वारा मण्डलेश्वर को दो तीन दिन रोकना चाहा। वह अन्दर गई और दरवाजा खटखटाया। हंसा ने दरवाजा खोला, वह बिलकुल शव की तरह प्रतीत हो रही थी। आयु तीस वर्ष के लगभग थी, वस्त्र बिलकुल सफेद पहिने थी। उसका मुख शुष्क हो गया था। देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता था जैसे यह मानवी शान्तदेवी आकाश तत्व से बनी है। हंसा बड़े-बड़े भावहीन नेत्रों से मीनल को देखने लगी। मीलन ने पूछा, "क्यों हंसा, क्या मुझ पर क्रोधित हो ?" हंसा ने तिरस्कारपूर्वक कहा मेरा, "क्या आवश्यकता पड़ गई ? तुम्हें कोई स्वार्थ सिद्ध करना होगा ?" मीनलदेवी ने कहा "तुम मुझे, स्वार्थी समझती हो ?" हंसा ने जवाब दिया. "तो क्या तुम स्वार्थी नहीं हो ? तुमने पन्द्रह वर्ष से मुझे कैद में रक्खा, तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुम स्वतन्त्र हो ! मेरा भाई तुम्हारा दास है ! पन्द्रह वर्ष की अवस्था में यदि तुमने स्नेहशील पति खोया होता, फूल के समान सुकुमार लाड़ले पुत्र को तड़पते हुये तुम्हारी गोद से छीन लिया गया होता, अनेकों वर्ष बिना किसी के साहस बँधाये, हृदय को चीर डालने वाला रुदन करते हुये, काटे होते तो तुम्हें खबर पड़ती कि धैर्य कैसे रक्खा जाता है ?"

मीनलदेवी ने होठ चबा लिये, परन्तु अपने को संयत कर कहा कि "देवप्रसाद सेना लेकर पाटन पर चढ़ाई करने आ रहे हैं। मुञ्जाल पाटन छोड़कर मधुपुर चला गया है, अतएव तुम जाकर उन्हें रोको।" परन्तु हंसा ने न माना। उसने मण्डलेश्वर के साथ रहने का प्रलोभन दिया, परन्तु हंसा ने उससे भी मना कर दी। इसी समय नीचे चौक में मीनलदेवी ने कोलाहल सुना। खिड़की खोलकर देखा कि त्रिभुवन अकेला वीर सिंह के समान लड़ रहा है। उससे सब भयभीत हैं। वह हाथ में नंगी तलवार लेकर

घुमा रहा है। त्रिभुवन को देख कर रानी के मन में तुरन्त एक विचार आया। चिन्तातुर हृदय से हर्ष के अंकुर फूटने लगे और इस समय की भयंकर विडम्बना से मुक्त होने के लिये उसकी स्वार्थ-बुद्धि ने मार्ग खोज लिया। सारी मनोभावनाओं को उसने दबा दिया; हृदय की राक्षसी प्रवृत्ति उसकी सहायता को आ पहुँची।

त्रिभुवनपाल मोठरी दरवाजे पर मण्डलेश्वर की प्रतीक्षा में खड़ा था। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि मण्डलेश्वर घोड़ी कुदा कर नगरकोट के बाहर निकल गये हैं। त्रिभुवन आज्ञाकारी बालक था। पिता के जाने का समाचार पाकर वह जाने लगा। दरवाजे सब बन्द हो गये थे। वह वेग से राजमहल जा पहुँचा। पिछला दरवाजा खुला देख वह जाना ही चाहता था कि पहरे-दारों ने उसे रोक लिया। उसने मीनलदेवी के पास सन्देश पहुँचाया। जयदेव को देख कर उसके पास गया, परन्तु उसने न पहिचाना। जयदेव ने उसे वहारवटिया (डाकू) कहा तथा सैनिकों से उसे पकड़ लेने को कहा। इतना सुनना था कि त्रिभुवनपाल ने तलवार खींच ली। उसको पकड़ने की किसी की हिम्मत न पड़ती थी, स्वयं जयदेव ने उसे पकड़ना चाहा कि उसी समय कहीं से आकर एक तीर जयदेव के हाथ में लगा। उसने जयदेव को घायल कर दिया। त्रिभुवन स्वयं घायल हो चुका था, परन्तु घायल सिंह की तरह चारों तरफ नंगी तलवार घुमा रहा था। इसी समय मीनलदेवी ने ऊपर से यह दृश्य देखा और हंसादेवी को दिखाया। उसका परिचय दिया कि वह हंसादेवी का पुत्र त्रिभुवन है। हंसा देखकर घबड़ा उठी तथा पुत्र को बचाने के हेतु मीनलदेवी को वचन दे दिया। तब रानी ने ऊपर से सैनिकों को रोक दिया। मीनल हंसा के साथ नीचे आई। हंसा आकर त्रिभुवन से लिपट गई तथा उसके बाल हटा, उसको चूम किया।

अधिक खून निकल जाने के कारण वह बेहोश सा होता जा रहा था, उसने देखा कि एक स्त्री आई है। हंसा ने कहा, "मेरे पुत्र !" त्रिभुवन बोल उठा, "मेरी माँ तो मर गई !" और वह चेतनाहीन हो गया।

त्रिभुवन ने जब आँखें खोलीं, देखा वह एक कमरे में लेटा है। वह नई स्त्री उसके पीड़ित हृदय पर हाथ रक्खे बैठी थी। त्रिभुवन ने धीरे से कहा "माँ !" सुनकर हंसा त्रिभुवन से लिपट गई। वह फिर अचेत हो गया। मीनलदेवी ने हंसा को अधिक समय न दिया। पुत्र का शौर्य देख उसका हृदय शान्त था, परन्तु उसे उस अवस्था में छोड़ना उसे हृदय विदारक प्रतीत हुआ। मीनलदेवी भाग्य के समान निश्चल थी, और हंसा बाल्यकाल से ही कोमल और दूसरों की इच्छा के आधीन हो जाने वाली थी। जरा कठोर अवसर आते ही वह कोमल लता की भाँति माथा झुकाकर सहन कर लेती थी। बार-बार त्रिभुवन का मुख चूम रही थी कि इसी समय सरल हृदया प्रसन्न आ पहुँची। उसने आश्वासन दिया कि उसके रहते त्रिभुवन को किसी प्रकार का कष्ट न होगा।

यति हंसा को पालकी पर बिठाकर ले चला। रानी ने यति आनन्दसूरि से कहा कि वह संध्या समय चाँपानेरी के दरवाजे पर उसे मिलेगी। यति राजपूत वेश में था। यति को बिठाकर रानी ने देखा, पलंग के पास जमीन पर प्रसन्न बैठी है। त्रिभुवन हाथ अपने हाथ में लेकर माथे से लगा रही है। मीनलदेवी ने पूछा कि उससे तेरा क्या सम्बन्ध ? प्रसन्न ने दृढ़ता-पूर्वक कह दिया कि इनके साथ सब कुछ है, यह तो मेरे माथे के मुकुट हैं। मुझे आपका मालवा नहीं चाहिये।

मीनलदेवी यह कह कर कि "संध्या के पहिले तैयार हो जाना, नहीं तो जोर-जुल्म से काम लिया जावेगा" क्रोध

में वहाँ से चली गई। मीनलदेवी के जाने पर प्रसन्न वहाँ से उठाकर सामल बारहठ के पास गई तथा उसने उससे सब बातें कह दीं। बूढ़े ने त्रिभुवन की सेवा स्वीकार की। बारहठ जी ने दवा त्रिभुवन के घावों पर लगा दी। प्रसन्न वाचस्पति को बुला लाई तथा त्रिभुवन की सेवा का भार उनको सौंप दिया। संध्या के समय मीनलदेवी ने प्रसन्न को भोजन के साथ कुछ नशीला पदार्थ खिला दिया, ताकि वह जाने में झंझट न करे। प्रसन्न थोड़ी ही देर में सो गई।

प्रसन्न को आँखें खोलने में बड़ी कठिनाई हुई। उसने देखा कि वह पालकी में है तथा कुछ घोड़े साथ-साथ चल रहे हैं। थोड़ी देर में पालकी रख दी गई। मीनलदेवी ने प्रसन्न को आकर देखा, वह चुपचाप आँखें बंद कर लेटी रही। मीनलदेवी प्रसन्न को शान्त देख परदा डालकर चली गई। कहार कुछ दूरी पर बैठे पान खा रहे थे, प्रसन्न उठी और बाहर निकल कर एक वृक्ष की आड़ में खड़ी हो गई। उसने देखा कि मीनलदेवी यति तथा मुरारपाल किसी गम्भीर वार्त्तालाप में उलझे हैं। मुरारपाल कह रहा था कि ज्योंही पहनी यह जानेंगे कि आप पाटन के गौरव पर आघात करने वाली कोई बात करने जा रही हैं, त्योंही पहनी कुछ न कुछ कर गुजरेंगे। रानी ने कहा कि वे सिर्फ मधु-पुर की सेना को हस्तगत कर लौट आवेंगी। तत्पश्चात् मुरारपाल को लौटा कर पालकी उठवाने का हुक्म दे, चल पड़ीं। विचारों की उलझन में उन्हें प्रसन्न का कुछ ख्याल न था। मशालों के अदृश्य हो जाने पर प्रसन्न निकल कर विचारमग्न मुरारपाल के समक्ष जा खड़ी हुई। मुरारपाल चौंक उठा। ज्ञात हुआ वह भी पाटन जाना चाहती है। मुरारपाल प्रसन्न को देख कर आकर्षित हो गया था। उसने प्रसन्न को घोड़े पर सामने बिठाला तथा खुद पीछे बैठ कर पाटन की तरफ चला।

देवप्रसाद मण्डलेश्वर के रुद्रमहालय में ठहरा था। सुबह जब वह उठा तो खुश था क्योंकि मुञ्जाल की राजनीति के कारण उसका मार्ग अवरुद्ध था। सुबह उठकर उसने महादेवजी को बिल्व पत्र चढ़ाये तथा पूजा कर शस्त्रों से सुसज्जित हुआ। वह मुञ्जाल से भेंट करने को घोड़ी पर चढ़कर जाने ही वाला था कि वस्तुचन्द हंसा को लेकर आ पहुँचा। देवप्रसाद उसे देखते ही आश्चर्यचकित् रह गये। बाद में बोले, "कौन हंसा ?" हंसा पालकी से बाहर निकलकर खड़ी थी। हंसा ने ज्योंही ऊपर देखा, वह एकटक देखती रह गई तथा अचेत हो गिरने लगी। मण्डलेश्वर ने दौड़कर संभाल लिया। उठाकर अन्दर ले गये तथा हंसा को चेत में लाने का प्रयत्न करने लगे। मुञ्जाल मेहता से मिलने का वायदा भूल गये। याद दिलाने पर मुञ्जाल को वहीं बुला भेजा। चेत आने पर हंसा ने अपने आने का कारण कहा तथा यह भी बतलाया कि त्रिभुवन वहाँ किस प्रकार घायल होकर पड़ा है। परन्तु राजा ने कहा कि त्रिभुवन शूरवीर है वह स्वयं अपने को बचा लेगा। तब देवप्रसाद को सन्देह हुआ कि त्रिभुवनपाल अवश्य उसी बालिका से मिलने नित्य पाटन जाया करता था। हंसा ने देवप्रसाद को उनके कर्त्तव्य की याद दिलाई, परन्तु वे हंसा को छोड़कर कहीं जाने को तैयार न थे। पन्द्रह वर्षों से छूटी हुई हंसा को वे छोड़ना न चाहते थे।

दिन व्यतीत हो गया, मुञ्जाल मेहता न आये। रानी ने देखा कि जगह-जगह चन्द्रावती की सेना पड़ी है। उसने अपने को सत्तावान समझा। जयदेव घोड़े पर सवार हो चुका था। रानी ने सुना मुञ्जाल कुछ सैनिकों को लेकर देवप्रसाद से मिलने बाघेश्वरी के मन्दिर जा रहा है। रानी ने उसी मार्ग से जाना चाहा। सूर्योदय होने पर मुञ्जाल मेहता से सामना हो गया।

रानी ने आदेश दिया था कि मुञ्जाल का बाल बाँका न हो। नायक ने फो मुञ्जाल रोका। मुञ्जाल के परिचय देने पर भी उसने रास्ता न छोड़ा, तब मुञ्जाल ने भाले से उसे मार डाला। जैसे ही यति चिल्लाया "जयदेव महाराज की जय" कि सुनते ही मुञ्जाल ने हथियार छोड़ दिये तथा अनजान होकर आक्रमण करने के हेतु क्षमा माँगी। मुञ्जाल शीघ्रता में था, परन्तु उसे न छोड़ा गया। रानी से सामना होने पर उसने भला-बुरा कहा। बोला कि यदि मुझ पर विश्वास हो तो मुझे जाने दीजिये, संध्या तक लौट आऊँगा। रानी ने व्यंगपूर्वक बहनोई-भानजे के पक्षपात करने, उन्हें पाटन का राज्य दिलाने का दोपारोपण किया परन्तु वह शान्त रहा। मुञ्जाल स्वस्थ और शान्त रहा। रानी के पूछने पर कि "जानते हो मैं कौन हूँ?" मुञ्जाल ने कहा कि मेरे परिश्रम से चतुर बनी, चन्द्रपुर की कुमारी, पाटन की रानी हैं और इस समय सोलंकियों को भस्मीभूत करने वाली योग माया हैं। मेरी समझ में कृतघ्न, अविश्वास, भावरहित, स्नेहशून्य—ये शब्द उसने झुक-कर मीनलदेवी के कान के समीप कहे। मीनलदेवी को कुछ न सूझा। मुञ्जाल ने सब शस्त्र फेंक कर अपने को कैद करा दिया तथा यति से मण्डलेश्वर के मार्ग को रोकने को कहा।

प्रसन्न मुरारपाल के साथ आँगन में आई। राजमहल के पास जाकर देखा कि समस्त दरवाजे बन्द थे। खिड़की पर दस्तक दी, परन्तु वह न खुली। अन्त में निराशा होकर लौटी और उदा मारवाड़ी के गृह के समीप आई। उदा मारवाड़ी नम्रता की मूर्ति परन्तु बुद्धिमान् था। खाने को उसके पास कुछ न था। कर्णवती में भीख माँगने आ गया था। एक विधवा जैन स्त्री ने उसे पुत्रवत् पाला। उसके मरने पर उसे पूरा धन मिला। उसी धन को उसने अपने उद्यम द्वारा बढ़ाया। कर्णदेव की मृत्यु पर घर का सोना चाँदी उसने जमीन में गाड़ दिया। जब प्रसन्न मुरारपाल

से विदा लेकर राजमहल की ओर गई, तब उदा उसके पीछे-पीछे गया था। अतएव जब वह निराश होकर उदा के गृह के समीप पहुँची, वह उसे अपने घर ले आया तथा प्रसन्न द्वारा उसने जान लिया कि मीनलदेवी जयदेव सहित पाटन के बाहर चली गई है। वह चाँपानेर दरवाजे के सामने रहता था, अतएव उसी का सहारा ले उसने प्रसन्न द्वारा सब हाल जान लिया। प्रसन्न ने उसे त्रिभुवनपाल का समाचार लाने राजमहल भेजा। उदा घर से बाहर निकला तथा वस्तुपाल इत्यादि सबको रानी के बाहर जाने का समाचार दे दिया। इसके बाद डूँगर नायक इत्यादि से कह सेठ शान्तचन्द्र के यहाँ पहुँचा। वहाँ सेठानी से सब हाल कहा। मोती चोक में उदा ने देखा कि खलबली मची थी। सब कह रहे थे—क्या किया जावे? उदा ने कहा कि धन-दौलत को ठिकाने लगा कर शान्तिचन्द्र सेठ को सौंपा करो और लड़ने को तैयार हो जाओ। डूँगर नायक अपने साथ दो सौ आदमियों को लेकर आ पहुँचा। सब राजमहल की ओर आये। लोगों की भीड़ बढ़ती गई तथा राजमहल के सामने अपार भीड़ जमा हो गई। लोगों को पाटन के प्रति प्रकट प्रेम था, अतएव संकट के समय वे जैनी तथा राजपूतो भेद-भाव भूल कर एक हो रहे थे।

सब तरफ शोर मचा हुआ था कि मीनलदेवी पाटन छोड़ कर चली गई हैं। सब सामन्त, साहूकार राजमहल के बाहर चौक में आ पहुँचे। टालर के बूढ़े मण्डलेश्वर ने यह बात सुनी और यह जानकर कि चन्द्रावती की सेना आ रही है, उबल पड़े। उदा ने देखा भले लोग आ रहे हैं, वह धीरे से राजमहल की ओर गया। दरवाजे बन्द थे। द्वारपाल ने घूस लेकर दरवाजे खोले। उदा शीघ्रता से लीलाधर वैद्य के पास गया। पता चला, वे त्रिभुवन पाल के पास हैं। वह वहाँ जा पहुँचा। देखा कि लीलाधर पास

चबा रहे हैं, त्रिभुवनपाल पलंग पर बैठा है, उसे प्रसन्न की चिन्ता थी। उदाजी ने त्रिभुवन से कहा कि वह पाटन के लोगों की तरफ से उनका निवेदन लेकर आया है। महारानी मीनल राजा जयदेव सहित चन्द्रावती चली गई है। चन्द्रावती की सेना पाटन को जीतने आ रही है। बिना नायक के पाटन निर्बल है, आपके हाथों सफल होगा। बारहठ भीमदेव के समय के तो थे ही। त्रिभुवन को जोश चढ़ आया। वह लीलाधर वैद्य के साथ वहाँ आ पहुँचा।

मुरारपाल सूर्योदय होने पर शान्तु मेहता से मिलने गया। उसने कहा कि महारानी कल संध्या समय तक आ जावेंगी, चाँपानेर का दरवाजा खोलना पड़ेगा। इसी समय शान्तु मेहता ने भयंकर पर अस्पष्ट आवाज सुनी, उसने जान लिया कि यह उद्वेलित सागर जैसी आवाज किसकी है। एक सागर दूसरा समाज। ये रूप अधिकांश में भयङ्कर प्रतीत होते हैं; उनकी अथाह गहराई में रत्नों की चमक, बड़वानल की भयङ्कर आग, दुःखदायक मगरों की रक्त-पिपासु लालसा समाविष्ट है। गौरवशीला शान्ति के समय आनन्द की तरंगें दोनों किनारों पर बहने लगती हैं, लहराने लगती हैं, ऐसा मालूम होता है कि आह्लाद-जनक संगीत की ध्वनि है। क्षण में हवा का रुख बदलते ही भयङ्कर गर्जना भी शुरू हो जाती है। पाटन की हवा बदल गई थी। आनन्द की लहरियों ने प्रचण्ड रूप धारण धारण कर लिया था। रानी, यति और शान्तिचन्द्र की रची हुई योजनाओं को भ्रमिसत करने के लिये समाज आगे बढ़ रहा था। समय की प्रलयकारी तरङ्गों ने ताण्डव नृत्य प्रारम्भ कर दिया था। शान्तिचन्द्र विचार में पड़ गया। सुन रहा था कि जनता "जय सोमनाथ" के नारे लगा रही है। इतने में मण्डलेश्वर खंगारजी शान्तु मेहता तथा महारानी से मिलने आये। खंगारजी ने शान्तु मेहता से जिद की कि वह महारानी या जयदेव से बिना मिले न जावे। शान्तु मेहता न माने।

यह कहते ही रहे, "राजमहल के दरवाजे नहीं खुलेंगे।" इसी समय त्रिभुवन आ गया। उसने कहा कुमार जयदेव के पिताजी की अनुपस्थिति में पाटन के दरवाजे मैं खोलूँगा मेरी सामर्थ्य है कि मैं राजमहल के दरवाजे खोलूँ तथा खेंगार ने एक खिड़की खोल दी। सारा जनसमूह उसी के द्वारा राजमहल के अन्दर आ चौक में फैलने लगा। शान्तु मेहता बोल उठा राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिये ही रानी पाटन छोड़ कर गई हैं। रानी मुञ्जाल तथा मण्डलेश्वर दोनों को सहमत करके कल सन्ध्या समय यहाँ लौट आयेंगी आप व्यर्थ शंका कर रहे हैं। उबलता जनसमूह शान्त पड़ा, परन्तु इसी समय विखराट का दूत एक पत्र लाया जिसमें लिखा था कि चन्द्रावती के सैनिकों ने विखराट में पड़ाव डालना शुरू कर दिया है। पत्र के शब्द सुनकर सब स्तब्ध रह गये, जैसे कड़क कर बिजली गिर पड़ी हो। सामन्त बारहठ ने जोशीला भाषण देना शुरू किया। अन्धे बारहठ की संस्कारयुक्त बुढ़ापे से टूटी हुई, फिर भी बुलन्द आवाज गूँज गई। सामन्त बारहठ से सारा पाटन परिचित था। जिन शब्दों ने भीमदेव को उत्तेजित किया था, वे शब्द फिर गूँज उठे। सुनने वाले एकाग्र चित्त से सुन रहे थे। एक साथ उन्होंने कहा, "जय सोमनाथ!"

क्षण भर गम्भीर श्मसान के समान शान्ति रही। दूसरे ही क्षण वहाँ खड़े सब लोगों ने शब्द दुहरा दिये—"जय सोमनाथ!" गम्भीर गर्जना गूँज उठी, उत्साह के आवेश में इस प्रकार अनेक तलवारें बाहर निकल आईं, जैसे अग्नि में आहुति देते ही ज्वालायें निकल पड़ी हों। त्रिभुवन ने खेंगार को मुखिया बनाना चाहा। राजकीय कोष में ताला डालने का निश्चय किया गया। उधर मेहता ने खर्च का सारा रुपया अपने पास से देने का वायदा किया। सामल बाहरठ अधिक उत्तेजित हो

चुके थे। अतएव चुप होते ही धम्म से भूमि पर गिर पड़े तथा "शिव ! शिव !!" कहते स्वर्ग सिधार गये। सारी सभा शोक-मग्न हो गई।

प्रसन्न को राजतन्त्र के अतिरिक्त बहुत सी बातों पर ध्यान देना था। उसका हृदय बेचैन था। वह त्रिभुवन के अशक्त शरीर को देख रही थी। उसने लीलाधर वैद्य को बुलाकर त्रिभुवन की याद दिलाई, लीलाधर वैद्य ने त्रिभुवन को दवा दी और आराम करने को कहा। लीलाधर वैद्य के जाने के उपरान्त प्रसन्न वहाँ आई। त्रिभुवन ने उससे पूछा कि जब वह बेहोश हो रहा था, उस समय उसके साथ कौन था ? प्रसन्न ने कहा, "मेरे साथ तुम्हारी माता हंसा देवी थी।" सुनकर त्रिभुवन ने पूरा हाल पूछा। प्रसन्न ने बतलाया कि किस प्रकार उसे लड़ते देख मीनलदेवी को हंसा ने वचन दे दिया था, ताकि वे त्रिभुवन को बचा लें। त्रिभुवन समझ गया कि पिताजी और मामाजी को अलग रखने के हेतु ही हंसा देवी को मीनल ने भेजा है। त्रिभुवन ने प्रसन्न से वचन ले लिया कि उसका प्रण प्रसन्न का भी प्रण होगा, तभी वह उसे अपनी जीवन-सहचरी बनावेगा, अन्यथा नहीं। प्रसन्न ने वचन दे दिया। प्रसन्न खिन्न चित्त थी ! एक तरफ त्रिभुवन का प्रेम उसका प्रण, दूसरी तरफ बुआ का स्नेह था, जिसकी छत्रछाया में वह पली थी। विचित्र परिस्थिति के बीच वह झूल रही थी। जब आनन्दसूरि रानी से अलग हुआ, तब उसके मस्तिष्क की स्थिति बड़ी विचित्र हो रही थी—सारी रात का जागरण, अनेक दिनों से ग्रहण की हुई जिम्मेदारी, अनेक वर्षों के परिश्रम का निकट दिखाई देने वाला अन्त—इन सब बातों से उसका हृदय पागलों की भाँति हो गया था। उसे एक ही वस्तु आँखों के सामने दीख रही थी—श्रावकों का उत्कर्ष। पहले तो उसे यह वस्तु बहुत निकट दिखाई दी : रानी

जैन है, दण्डनायक जैन है, वह स्वयं परामर्श देने वाला है, चंद्रावती की सेना है। जहाँ स्थिरता आई कि जैनमत का डंका सारे भारत में बज जायगा। इसके बाद सहसा कि रानी की सत्ता प्रियता का ध्यान आया। धर्म के जोश की अपेक्षा उन्हें सत्ता-प्रभुता पसन्द थी। शान्तु मेहता सीधा व्यक्ति था। मुञ्जाल व देवप्रसाद का ध्यान आते ही उसे अपने स्वप्न अधूरे प्रतीत होने लगे। सैनिकों को छोड़ कर वह शीघ्रता से बाघेश्वरी देवी के मन्दिर में जा पहुँचा। वहाँ कोई न दिखलाई पड़ा। यति प्रसन्न हो उठा। हंसा के कारण जो सोचा था उसी मन्दिर के चबूतरे पर बैठकर सैनिकों की बाट देखने लगा। रानी के साथ जो विकार हुआ था, उसके अनुसार मंडुकेश्वर का नाका ही घेर लेने का निश्चय था। सेना के निकट आ जाने पर वह सीधा मंडुकेश्वर की ओर चला तथा नाका रोक ठहर गया। संध्या समय तक रुद्र-महालय में किसी प्रकार की हलचल न जान पड़ी। यति ऊब गया। रात हो गई तो भी पता न चला कि देवप्रसाद क्या कर रहा है? वह टुकड़ी को आगे करके रुद्रमहालय तक गया। रुद्र-महालय के द्वार को जब खटखटाया, तब एक सैनिक ने आकर जरा खिड़की खोल दी। सैनिक ने यति को पहिचान लिया और कहा कि हाथ पैर बँधवा कर हो यति देवप्रसाद से मिल सकता है, अन्यथा नहीं। वह वापिस आ गया। सैनिकों को पड़ाव डालने की आज्ञा देकर अकेला वृक्ष के नीचे इस प्रकार घूमने लगा जैसे प्रेत विद्या के द्वारा भैरवनाथ की आराधना कर रहा हो।

सयानपन और पागलपन में थोड़ा ही अन्तर होता है। सयानपन में मनुष्य के चित्त को एकाग्र करके जरूरत पड़ने पर उसे स्थिर किया जा सकता है, परन्तु पागलपन में स्थिर नहीं किया जा सकता। यति का जोश उसके सयानपन को पागलपन में

रूपान्तरित कर रहा था। जैन धर्म की विजय-कामना में शत्रुओं के प्रति वैर-भाव रखना सरल था। उसके इस शत्रु-भाव की सारी भावनायें देवप्रसाद की ओर घूम गई थीं—पागलपन का रूप धारण करती जा रही थीं। चलते-चलते वह रुद्रमहालय के कोट के पीछे, पूर्व में सरस्वती नदी के तट की ओर गया।

महालय की सबसे ऊंची छत ठीक कोट के बराबर थी, उसके नीचे पानी लहरा रहा था। छत पर उसने एक पुरुष की छाया देखी। साथ में एक अन्य छाया थी। यति हँस पड़ा। आनन्द-विलास में सत्ता को विस्मृत कर देने वाले देवप्रसाद के प्रति उसे तिरस्कार हो आया। उसका चित्त प्रसन्न हो उठा। गुरुदेव की भविष्यवाणी स्मरण हो आई ' "देवप्रसाद अब तेरे दिन पूरे हो गये। तू भी अब आनन्दसूरि के हाथ मजा चखेगा।" कह कर धीरे-धीरे वह लौटा। उसके एक सैनिक ने आकर समाचार दिया कि देवप्रसाद की सहायता के लिये वल्लभसेन माण्डलेश्वर कोई पाँच सौ घुड़सवारों को लेकर आ रहा है। सुनकर यति का पागल-पन बढ़ गया। क्या बिलकुल अन्तिम क्षण में मण्डलेश्वर उसके पंजे से निकल जावेगा? वह विचार करने लगा कि वल्लभसेन के पहिले वह किस प्रकार अपना कार्य सिद्ध कर डाले। कोट के ऊपर बड़ी-बड़ी कीलें गड़ी हुई थीं, अतएव उन पर चढ़ना असम्भव था। वह फिर तेजी से उस जगह पहुँचा, जहाँ कोट से सट कर सरस्वती बह रही थी। हाथ गड़ा कर बहुत ध्यान से देखने पर कोट से बहती हुई बड़ी-सी मोरी दिखलाई पड़ी। उसने एक क्षण का भी विलम्ब न किया और एक कटार के सिवा सब वस्त्र अलग फेंक कर सरस्वती में कूद पड़ा। बड़ी कठिनता से अन्दर गया। वह तेजी से इधर-उधर देखने लगा और विचार करने लगा कि किस प्रकार देवप्रसाद का संहार करे? घोड़े की टाप पास सुनाई पड़ रही थी कि सामने

एक गौशाला दीखी। पास ही महल की इमारत से सटा हुआ घास के मैदान में ऊँचा ढेर देखा। उसके हृदय में एक राक्षसी विचार आया। उसने उस घास के ढेर में आग लगा दी तथा हर्ष से हाथ मलने लगा। फिर रुद्रमहालय के एक छोटे से द्वार तक पहुँचा और बाहर निकल गया। उसके हर्ष का पार न था। उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो गया था। अहिंसा परम धर्म है, इसको मानते-मानते और उसका प्रसार करते-करते वह निम्नतम कोटि की हिंसा करने तक पहुँच गया था। थोड़ी देर में महालय के खण्ड की खिड़की सुलग उठी। दो एक खिड़कियों से धुँआ निकलने लगा। यति आनन्द में निमग्न होता गया। उसकी एकाग्रता फलीभूति हो गई थी।

लोगों की चिल्लाहट और जलती हुई लकड़ियों की कड़कड़ाहट से अपनी प्रियतमा के साथ मण्डलेश्वर जाग उठा और आस-पास देखने लगा। देवप्रसाद ने हंसा को शाल उढ़ाकर नीचे जाना चाहा, पर नीचे का कमरा लाल हो रहा था। अतएव वह हंसा को लेकर ऊपर छत पर पहुँचा। चारों ओर से लपटें आ रही थीं। उसने देखा कि अब बचने की कोई आशा नहीं है। उसने बड़े प्रेम से हंसा को कई बार प्यार किया तथा हंसा को जकड़ कर नीचे सरस्वती के जल में कूद पड़ा। उसे बाल-काल से ही मृत्यु के साथ खेलने का बड़ा शौक था। वह जिस साहस से पाटन के घरों पर कूदता था, उसी साहस ने आज उसकी सहायता की। यति ने देखा ऊँची छत से दो व्यक्ति एक दूसरे से लिपटे हुये नदी में कूदे हैं। यति ने पुकार कर सैनिकों को आज्ञा दी कि तैरने वाले जैसे ही बाहर निकलें, उन्हें समाप्त कर दो और स्वयं नदी में कूद उनके पीछे जाने लगा।

वल्लभसेन की चिन्ता बढ़ गई थी। जैसे ही वह मण्डलेश्वर के पास पहुँचा, उसने देखा कि महल जल रहा था। गम्भीर मल ने

आकर खबर दी कि मण्डलेश्वर को यति ने जला दिया। वे मुञ्जाल मेहता से मिलने जा रहे थे, परन्तु उसी समय मीनलदेवी आ गई। अचानक महाराज रुक गये। मन्दिर के निकट पहुँचने पर रामसिंह ने बतलाया कि महाराज हंसादेवी सहित सरस्वती में कूद पड़े हैं तथा यति भी उनके पीछे-पीछे कूदा है। दो तीन घड़ी का समय हुआ है। गम्भीरमल तथा वज्रभसेन ने तीन साँड़नियों को नदी के किनारे दौड़ाने का आदेश दिया।

जब देवप्रसाद नदी में कूदे, उस समय उन्हें बचने की बहुत आशा हो गई थी। हंसा अचेत हो गई थी। उसके हाथ देवप्रसाद के हाथ से छूट गये थे। अब मण्डलेश्वर की अद्भुत परीक्षा का समय था। वह अचेत हंसा को बाँये हाथ से थाम, दाहिने हाथ से तैरने लगा। आधी घड़ी बाद ही उन्होंने पीछे से किसी के तैरने की आवाज सुनी। ज्योंही वे किनारे की तरफ मुड़े कि उनके निकट तीर आकर गिरा। वे आगे बढ़ने लगे, हंसा अचेत थी। उसका भी ध्यान था। इसी समय सूर्योदय हो गया था। देखा यति पीछा कर रहा है। यति को ध्यान हुआ कि मण्डलेश्वर से पानी में द्वन्द युद्ध करना मूर्खता से खाली नहीं। हारा थका हुआ देवप्रसाद उसे चुटकियों से मसल सकता है। उसने युक्ति से काम लिया। वह घूम पड़ा और मण्डलेश्वर को अपने पीछे किनारे की ओर ले जाने लगा। यति ने उसे गुरु के वचनों का स्मरण दिलाया। मण्डलेश्वर को यति का वचन याद आ गया कि मण्डलेश्वर की सहायता करने का वचन उसने दिया था। मण्डलेश्वर ने उससे स्पष्ट कह दिया कि वह उससे प्राणों की भिक्षा न माँगेगा। हाँ वह यह बतलावे कि हंसा जीवित है या मृत। यति ने हंसा को देख तुच्छता से हँसकर कहा इसमें क्या रक्खा है ? इतने समय में वह देवप्रसाद को किनारे ले आया था। यति ने हाथ उठाकर

सैनिकों को इशारा किया। किनारे से एक तीर आकर मण्डलेश्वर की गर्दन में घुस गया। मण्डलेश्वर 'नीच, दगाबाज' कहकर उछला तथा यति की गर्दन पकड़ उसका दम घोंटने लगा। इसी समय वल्लभसेन 'जय सोमनाथ' कहता हुआ आ पहुँचा। मण्डलेश्वर ने भी एक हाथ उठाकर 'जय सोमनाथ' का रण-गर्जन किया। वल्लभ-सेन ने पानी की इस लड़ाई को देखा, मण्डलेश्वर को पहिचान गया तथा अस्त्र फेंक पानी में कूद पड़ा। इतनी देर में देवप्रसाद की गर्दन से काफी खून निकल गया था। वे यति को घसीटते हुए हंसा के शव के समीप ले गये। हाथों में थकावट आ गई थी। वल्लभसेन से "आवश्यकता नहीं है" कह लौट जाने को कह कर बोले कि 'त्रिभुवन को देखना' और यति सहित हंसा को चिपकाये मण्डलेश्वर ने डुबकी लगा दी। वल्लभ "महाराज! महाराज!" कहता ऊपर रह गया। उस स्थान पर पहुँचने के पहिले ही मण्डलेश्वर पानी के नीचे चले गये। गुजरात के सर्वश्रेष्ठ महारथी कपटी शत्रुओं के विश्वासघात और प्रेम का पागलपन का भोग बनकर संसार से छुप कर सरस्वती की गोद में जा बैठा। वल्लभसेन ने कई डुबकियाँ लगाईं, परन्तु कुछ हाथ न लगा। अतएव निराश होकर लौट आया। बिना कुछ बोले, उसने एक धनुष-बाण ले लिया तथा यति के एक-एक सैनिक को बिना क्षण भर विचार किये बाणों से बेध डाला।

वल्लभसेन ने आनन्दसूरि को पानी में उतरते देख कूद कर निकाल लिया। जब उसे मण्डलेश्वर ने पकड़ लिया था, तब मृत्यु, को निकट जान उसने प्राणायाम आरम्भ कर दिया था। ज्यों ही मण्डलेश्वर ने डुबकी लगाई तो उनके हाथ से छूटकर पानी की सतह पर आ गया। परन्तु वल्लभसेन ने उसे कैद कर लिया तथा दल के साथ मेरल की ओर लौट पड़ा। कुछ लोग मल्लाहों से जाल डलवा कर नदी में लाशों का पता लगाने के लिये रह गये।

वल्लभ जब रुद्रमहालय के निकट आया, तब उसे अपने घुड़सवारों में निराशा और भगदड़ दीखी। मण्डलेश्वर का नाम गुजरात के गाँवों में जादू का सा प्रभाव रखता था और इस समय जन-जन के हृदय में उत्साह भरने वाला देवांशी महारथी अदृश्य हो गया था। लौटते समय पाँच सौ सैनिकों ने मण्डलेश्वर के उस पवित्र धाम की ओर दृष्टिपात किया, जहाँ क्षेमराज ने अपना संन्यस्त जीवन व्यतीत किया था और जहाँ उनके प्रभावशाली पुत्र की ऐसी अद्भुत परिस्थिति में मृत्यु हुई थी। सभी लोगों के नेत्रों में जल भर आया। भूख, प्यास, गर्मी, जाड़ा और युद्ध के अनेक कष्टों को साहस से सहने वाले योद्धाओं के हृदय अपने नायक की मृत्यु से सिसक उठे। बाद में उन्होंने विचार किया कि अब देवस्थली न जाने पावें। वे पाटन की अवस्था देखने चल दिए। गम्भीरमल्ल ने मेरल का प्रबन्ध हाथ में लिया। वल्लभसेन को देवस्थली की ओर भेजा। त्रिभुवन को मण्डलेश्वर के स्थान पर आसीन कराया तथा 'महाराज त्रिभुवन की जय' बोल पाटन की ओर त्रिभुवनपाल को छुड़ाने चला। मध्याह्न के समय वह मेरल की सीमा पर पहुँचा। वहाँ उसने उत्साह देखा। समस्त सैनिक पाटन की ओर कूच करने को तैयार हो रहे थे। त्रिभुवन के भेजे हुए लोग आये थे और रानी की प्रवृत्ति, मुञ्जाल मेहता के बन्दी होने तथा पाटन के विद्रोह का समाचार लाये थे। त्रिभुवनपाल ने वल्लभसेन के पास सन्देश भेजा कि पिता को लेकर शीघ्र आये। वल्लभसेन सेना सहित खिखराट की ओर चला।

जिस समय मण्डलेश्वर की सेना मेरल में उनकी मृत्यु से शोक-संतप्त क्रोधित हो बदले की भावना से उबल रही थी, उस समय पाटन के राजमहल में प्रसन्न म्लान मुख से पीपल की पूजा कर रही थी। त्रिभुवन बदल गया था। कम

बोलता था। गंभीरता आ गई थी। अपने घावों, अशक्त शरीर की परवाह न करके कर्त्तव्यपरायणता निभा रहा था। प्रसन्न समस्त दिन उसके पीछे-पीछे घूमती रही, परन्तु त्रिभुवन ने उससे एक बात न की। इसी समय लीलाधर वैद्य ने आकर प्रसन्न से त्रिभुवन के खाने-पीने की व्यवस्था करने को कहा। कार्य की अधिकता के कारण वह खाना-पीना तक भूल गया था।

कुछ देर में बैर की अग्नि से निरन्तर जलता हुआ त्रिभुवन-पाल वहाँ आ पहुँचा और कुछ खा कर उठ गया। वैद्य जी ने घावों पर पट्टी बाँधी तथा दवा लाने के बहाने वहाँ से चले गये। प्रसन्न ने त्रिभुवन के पास आकर उसके कन्धे पर हाथ रखा तथा धीमे स्वर से कहा कि यदि विश्राम न करोगे तो व्रत किस प्रकार पूर्ण होगा? उसने सन्देहपूर्वक कहा कि मीनलदेवी किसी भी दरवाजे से अन्दर आ सकती है। यदि मुञ्जाल या जयदेव कोई अन्दर आ गया तो पहनी बदल जावेंगे। उसे प्रसन्न तक का विश्वास न था, इससे सन्न क्रोधित हो गई। बोली, "सामन्त बारहठ ने हमें साथ-साथ शिक्षा दी है। मैंने कल ही तुम्हारी पत्नी बनना स्वीकार किया है, फिर भी तुम अविश्वास करते हो? तुम्हारे लिये मैं रास्ते से भाग आई, फिर भी मुझ पर विश्वास नहीं करते?"

त्रिभुवन पाल ने उससे पूछा कि वह कल कह गई थी? प्रसन्न ने हँस कर उत्तर दिया, "अब तक यह क्यों न पूछा? आज सन्ध्या समय मीनलदेवी चुपचाप चाँपानेर दरवाजे से आने वाली है। मुरारपाल उन्हें लेने जावेगा।" यह सुनते ही त्रिभुवन पाल मुरारपाल को मारने को तत्पर हुआ। प्रसन्न ने रोक कर कहा कि इसका उपाय मैं कर लूंगी। वह एक सामन्त है। त्रिभुवन ने शंकित हो पूछा, "तुम क्या करोगी?" इस पर प्रसन्न ने कहा, "परसों मैं मुरारपाल के साथ आई थी। अतएव जान-पहिचान

हो गई है। वह मुझ पर मुग्ध है । इसी कमजोरी का लाभ उठा कर उसे दरवाजा न खोलने दूंगी।" सुनकर प्रथम त्रिभुवन क्रोधित हुआ। प्रसन्न ने कहा, "मुझे भी इस बात का खेद है कि यह कार्य करना होगा। परन्तु बल की अपेक्षा यहाँ बुद्धि से काम लेना होगा, ताकि कोई जान न सके।" यह सुनकर त्रिभुवन प्रसन्न हो गया। संध्या को त्रिभुवन भी साथ जायगा, यह निश्चित कर दोनों परस्पर प्रेमालाप में लीन हो गये।

दोपहर बीत गया और संध्या होने लगी। पाटन में थोड़ी बहुत शान्ति का प्रसार हो गया था। सारे लड़ाके कोट की रक्षा और बाहरी सेना के घेरे से उसे बचाने के लिये तत्पर हो रहे थे। मोंढ़री द्वार पर मण्डलेश्वर खेंगार ने मोर्चा खड़ा किया था। यह समाचार सारे नगर में फैल गया था कि मीनलदेवी विखराट में चन्द्रावती की सेना लिये पड़ी है, इससे लोग उस पर बहुत ही नाराज हो रहे थे। संध्या होने को आई। राज महल के पिछले द्वार से तीन व्यक्ति बाहर निकले। आगे शाल में लिपटी हुई एक लड़की, फिर ढाटे से मुँह बाँधे हुये एक राजपूत तथा डूंगर नायक। तीनों वेग-पूर्वक चाँपानेरी दरवाजे की ओर चले। उदा के घर के पास पहुँच कर लड़की ने राजपूत से हट जाने को कहा। इस प्रकार अभिसारिका बनने पर प्रसन्न की संस्कारशील आत्मा को दुःख तो अवश्य हुआ, फिर भी उसने अपने निश्चय के आगे अन्य विचारों को दूर कर दिया। वह सामने वाले शिवालय में घुस गई। वहाँ के सेनापति ने चाँपानेरी दरवाजे की व्यवस्था करने का भार अपने ऊपर ले लिया था। वह जिस बाला के पीछे पागल हो गया था और जिसका स्मरण उसके रोम-रोम में रम रहा था, उसने इसी शिवालय में मिलने का संकेत किया था। रानी के दरवाजा खोलने में अभी विलम्ब था।

वह शिवालय में प्रविष्ट हुआ। इस अवसर के लिये उसने अपने सशस्त्र और सुन्दर शरीर पर सादे और स्वच्छ वस्त्र धारण किये थे और अपने सौभाग्य पर वह मन ही मन मुस्करा रहा था।

उसने उदा से जान लिया था कि वह सुन्दरी कौन है। उसने प्रसन्न से पूछा कि तुम्हारा विवाह तुम्हारी बुआ अवन्ती में करना चाहती है। प्रसन्न ने कहा कि इसी से वह भाग आई थी। महत्वाकांक्षी मुरारपाल अपने सौभाग्य का स्वप्न देख रहा था कि इतनी सुन्दर बाला। उस पर आसक्त है। फिर वह मीनलदेवी की भतीजी भी है। भगवान् की कृपा से मीनलदेवी पर उपकार का भार चढ़ाने का भी सुअवसर मिल गया। प्रसन्न उससे अधिक चतुर थी; वह भी मुरारपाल को तारे दिखलाने लगी।

मुरारपाल समय निकट जान प्रसन्न को पहुँचाने को उतावला हो गया, परन्तु प्रसन्न न गई। उसने उसे स्वार्थी इत्यादि कहकर रुष्ट होने का अभिनय किया और इस प्रकार उसने मुरारपाल से कारण जान लिया तथा यह भी जान लिया कि चाबी उसके पास भी है। उसने मुरारपाल से पहली होने का कारण कहा कि उसका कर्त्तव्य पाटन के प्रति है। परन्तु उसी समय किसी ने दरवाजा खटखटाया। मुरारपाल तुरन्त घूम पड़ा और कुंजी निकाली। खिड़की की दराज में से बाहरी व्यक्ति ने बताया कि रानी आ रही हैं, अतः वह दरवाजा खोलने लगा। प्रसन्न ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा कि यदि वह चाबी उसके हाथ में दे दे तो प्रसन्न उसका वरण करेगी। यह कहकर प्रसन्न ने मुरारपाल के कंधे पर हाथ रख दिये। मुरारपाल खुश हो गया। प्रसन्न के कथनानुसार उसने अर्गला फिर से लगा दिया और चाबी प्रसन्न के हाथ में दे दी। चाबी लेकर वह रूक्षता से बोलने लगी। मुरारपाल उसका परिवर्तित रुख देख उसे विश्वासघातिनी कह चाबी छीनने ही वाला था

कि त्रिभुवन पाल तथा डूँगर नायक धीरे से आ गये। त्रिभुवनपाल ने मुरारपाल को डाँटा तथा डूँगर नायक को चाँपानेरी दरवाजे की रक्षा का भार सौंप कर चला गया। मुरारपाल दूसरी ओर सिर नीचा किये चला गया। दरवाजे पर खटखटाहट होती रही। डूँगर नायक मुख पर हाथ रखे हँसता रहा। त्रिभुवन पाल प्रसन्न सहित प्रफुल्ल-चित्त वापिस चला आया। आने पर ज्ञात हुआ कि दो-तीन व्यक्ति समाचार लेकर आये हैं। एक मालवराज के गुजरात में प्रवेश करने का समाचार लाया था। दूसरा सैनिकों की मारपीट का समाचार लाया था। तीसरा रामसिंह था, इसने रोते रोते हुए मण्डलेश्वर देवप्रसाद के दुखद अन्त की गाथा संक्षेप में कह सुनाई। त्रिभुवन शोक और क्रोध से स्तब्ध रह गया और नगर में ढिंढोरा पीटने का आदेश देकर चुपचाप जाकर लेट रहा। प्रसन्न उसके पीछे-पीछे गई, परन्तु त्रिभुवन ने उसे जोर से झिड़क दिया। त्रिभुवन के धक्का देने पर भी वह उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोली, "आप क्या करना चाहते हैं ?" त्रिभुवन सुनकर उबल पड़ा और उसने आवेशपूर्ण हाथ ऊपर ताना ही था कि प्रसन्न की सुधापूर्ण, अश्रुपूर्ण आँखें देखकर हाथ नीचे कर लिया तथा एक दम "हाय पिता जी" कह कर जोर से रो पड़ा।

प्रसन्न ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया तथा प्रेम-पूर्वक उसके माथे और कपाल कर हाथ फेरने लगी। दुःख के प्रबल भार से त्रिभुवन उसके आधीन हो गया। स्त्री जाति में हर आयु में मातृत्व का अंश रहता है और पति-अंश उनमें सहिष्णुता, क्षमा और स्नेह को प्रेरित करता है।

ज्योंही नगर में समाचार फैला कि यति की दुष्टता से देव प्रसाद का दुखद अन्त हुआ है, सब तरफ शोक छा गया। सभी के हृदय में रानी और चन्द्रावती से बदला लेने के संकल्प उठने लगे। उदा ने प्रातःकाल निमन्त्रण भेजकर सभी जातियों के अग्रणी

मुखिया तथा सामन्तों को बुलवाया । उनके आने पर त्रिभुवन पाल पहुँचा । उसके नेत्रों में प्रतिशोध का तेज चमक रहा था। उसने स्पष्ट कहा, "अभी तक मैं इसलिये चुप रहा था कि पर-देशी पाटन में न आने पावें, परन्तु अब इसलिये लड़ूँगा कि मैं राज-द्रोही हूँ । रानी की आज्ञा से मेरे माता-पिता बुरी तरह मारे गये हैं, अतएव मैं उसका बदला लूँगा। एक ही मार्ग है कि रानी चन्द्रपुर लौट जावें । उनके चले जाने पर हम जयदेव को सोलङ्कियों के सिंहासन पर बैठने देंगे । मैं अपने जीते जी मीनल देवी को पाटन में न घुसने दूंगा । यदि आपका विचार इसके विपरीत होगा, तो मैं स्वयं पाटन को छोड़कर चला जाऊंगा। मेरी सेना पड़ी है, वह अपने स्वामी की मृत्यु का बदला लेने को तड़प रही है। जैसा आप लोगों का विचार हो, वैसा मुझे सूचित कीजिये।" इतना कह वह चला गया। अन्दर जाकर देखा प्रसन्न शीघ्रता से अपने वस्त्रों और आभूषणों को संभाल रही है। पूछने पर कहा कि तुम्हारे साथ पाटन से बाहर जाने की तैयारी कर रही हूँ । त्रिभुवन पाल ने प्रसन्न का हाथ कृतज्ञता से दबा लिया। सभी अग्रणी लोगों ने त्रिभुवन के पक्ष में फैसला किया तथा उसको सूचित कर दिया।

त्रिभुवन पाल ने समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिया। मुरारपाल को रानी के पास समझाने को भेजा। वल्लभसेन के पास समाचार भेजा कि अभी पाटन मेरे अधीन है, अतएव सेना को तैयार रख कर वल्लभ को वहीं पड़ाव डाले रहना चाहिये।

जब मीनलदेवी को चाँपानेरी दरवाजे से कोई उत्तर न मिला तब उसके क्रोध और अकुलाहट का पारावार न रहा। उसे मुरारपाल पर क्रोध था। आनन्दसूरि अभी तक न लौटा था। एक मुञ्जाल था, उससे रानी किस प्रकार पूछे ? मुञ्जाल कैदी

बनकर घूमता रहता पर मुख से एक शब्द न बोलता था। इस समय उसे अपनी परिस्थिति का कुछ ज्ञान हुआ। इस समय मुञ्जाल की राजनीति की महत्ता का ख्याल आया। एक ओर पाटन दरवाजा बन्द किये है, पीछे मण्डलेश्वर की सेना पड़ी है, केवल पराई चन्द्रावती की सेना का भरोसा है। यहाँ रानी को देवप्रसाद के सरस्वती के जल में डूब जाने का समाचार मिला। आनन्दसूरि वल्लभसेन की कैद में है। दिन चढ़ने पर रानी ने शान्तिचन्द्र के पुत्र विनयचन्द्र तथा विजयपाल को बुला भेजा। इसी समय मुरारपाल आया। उसने कहा कि वह पाटन से संदेश लाया है। त्रिभुवनपाल सोलंकी मालिक बना बैठा है तथा यह भी कहता है कि मीनलदेवी के रहते जयदेव पाटन में पैर नहीं रख सकता, मीनलदेवी चन्द्रपुर वापिस चली जावें। जयदेव को महाराज बनने पाटन भेज दें। फिर उसने सारी कथा कह सुनाई। सुनने वाले सब चकित् हो गये। जिनका स्वप्न में भी विचार न था, वे विपत्तियाँ सामने आ रही थीं। जब सब लोग पाटन के गौरव की बात करते थे, तब रानी हँसा करती थी। अपनी सत्ता, अपने अधिकार के आगे पाटन के बुद्धि-चातुर्य्य का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य न था। परन्तु इस समय पाटन के बुद्धि-चातुर्य्य, उसकी सत्ता से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हो गये। फिर एकान्त में मुरारपाल ने बहाना बनाकर अपने पकड़े जाने का हाल कहा तथा यह भी कहा कि प्रसन्न से कोई मतलब सिद्ध न होगा, परन्तु रानी को भतीजी पर विश्वास था। विनयचन्द्र को उसे बुलाने भेजा।

त्रिभुवनपाल ने इस शर्त्त पर आमन्त्रण स्वीकार किया कि पच्चीस-पच्चीस सैनिक लेकर बिलकुल मध्य स्थान पर क्षेमराज की बावड़ी के पास प्रसन्न मीनलदेवी से भेंट करेगी। मीनलदेवी समझती थी कि प्रसन्न को फुसलाना सरल है। दूसरे दिन प्रातः

काल पाटन और खिखराट के बीच वाली चेमराजदेव की बावड़ी के पास पाटन की पद-भ्रष्ट रानी बैठी थी। धीरे-धीरे उसका मान भंग होता जा रहा था। थोड़ी देर में समर प्रसन्न के साथ अन्दर आ पहुँचा। आकर वह मीनल के पैरों लगी और स्वास्थ्य का हाल पूछने लगी। प्रसन्न बाहर से साहसी दीख रही थी, परन्तु मीनल के साथ बात करने में घबड़ा रही थी। मीनलदेवी ने काम की बात करनी शुरू की कि किस प्रकार पाटन वालों ने उसके विपरीत प्रपञ्च रचा है। मीनलदेवी ने कहा—उन्हें कुछ न मिलेगा। और पाटन वालों की उत्तेजना का हाल पूछा।

प्रसन्न ने स्पष्ट कह दिया कि लोग कहते हैं कि आपने परदेशियों को बुलवाया और मण्डलेश्वर महाराज को मरवा डाला। मीनलदेवी से बुलाने का कारण पूछने पर उसने कहा कि प्रसन्न प्रयत्न करके पहनियों का विरोध शान्त करे। त्रिभुवन को वश में करना प्रसन्न के हाथ में है। बदले में राजी-खुशी से वह प्रसन्न का विवाह त्रिभुवन के साथ कर देगी। सुन कर प्रसन्न को हंसी आ गई, बोली, "मैं तो स्वयं वरण कर चुकी हूँ। अब आपकी राजी-नाराजी से क्या मतलब है? हाँ, यदि आप चाहें तो जयदेव को साथ भेज दें, क्योंकि जयदेव का पदाभिषेक होगा।" इतना कह प्रसन्न चली गई।

खिखराट से लौटने पर रानी की अकुलाहट का पारावार न था। बात को छिपा गई। चारों ओर से उसे निराशा हाथ लग रही थी। वह अधिकार के लिए, सत्ता के लिए, महत्वाकांक्षा पूर्ण करने पाटन आई, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। देवप्रसाद तथा उसके पुत्र को आखिर क्यों इतनी लोकप्रियता प्राप्त हो रही है आदि बातें सोचती रही। मुरारपाल ने कहा, "देवप्रसाद से भी अधिक वीर तथा चतुर उसका बेटा त्रिभुवन है, उसमें पिता तथा मामा मुञ्जाल दोनों के गुण उतर आये हैं। आप त्रिभुवन

को समझाने के लिए उसके मामा को क्यों नहीं भेजतीं ?" इस समय रानी ने स्पष्ट नाहीं कर दी। मुरारपाल के जाने पर सोचते-सोचते रानी को मुञ्जाल की याद आई--उसके साथ के बीते हुये पन्द्रह वर्षों का व्यवहार ! लेकिन विवेक ने कहा वह नगण्य मंत्री है, द्रोही है ! परन्तु भावनायें सोलह वर्ष का समय भूल कर, उनके पूर्व जा पहुँचीं। पिता के दरबार में भोगे हुये सुखों को फिर भोगने लगीं। वह स्वच्छंद, आकांक्षापूर्ण हृदय कौमार्यावस्था में था; तभी व्यापार के लिये आये एक नर-रत्न को देखा। नई मोहक उमंग के वश होकर उसके चरणों में प्रणिपात किया। उस क्षण का आह्लाद और अनुभव किये हुये प्रसंगों के अवर्णनीय सुख हरे-भरे हो उठे। उसी के कारण उस भूमि के नरेश से शादी करके उस नर-रत्न के समीप रहना स्वीकार किया। वह भावनाओं में डूब गई तथा मुञ्जाल की हूक उसके हृदय में उठी, परन्तु उसने भावों को दबा दिया। प्रातःकाल उसका रूप, उसका हृदय बदल चुका था, अब वह उग्र मीनलदेवी न होकर नम्रता की मूर्ति थी। समरसेन के कहने पर उसने मुञ्जाल को बुलवाया।

मुञ्जाल के आने पर रानी ने देखा, वही दृढ़ तथा सत्तादर्शक चाल। मुख ग्लानि से भरा—आँखों में अप्रसन्नता। रानी ने मुञ्जाल से क्षमा माँगी तथा अपनी दुःख गाथा कह सुनाई—देव-प्रसाद व हंसा का अन्त, त्रिभुवन पाल की प्रतिज्ञा इत्यादि। वह चुपचाप सुनता रहा। अन्त में मुञ्जाल ने चिढ़कर कहा कि जब तक मन्त्री था बुद्धि थी, अब बुद्धि नहीं है। रानी ने बहुत कुछ कहा, परन्तु मुञ्जाल द्रवित न हुआ। रानी विलाप करती रही। मुञ्जाल से बोली कि वह मीनल से क्यों बदल रहा है ? मुञ्जाल असहाय खड़ा रहा और फिर मीनलदेवी को छोड़कर चला गया।

समरसेन संदेश लेकर आया कि मुञ्जाल मेहता ने कहा है कि जो कुछ करना हो, वह कल न करके परसों करे। कल वह

पाटन जा रहे हैं।

रानी का हृदय कुछ हर्षित हो गया। उसके मस्तिष्क में आशा के कुछ अंकुर प्रस्फुटित हो गये। इसी समय आनन्दसूरि सेना लेकर आ पहुँचा। उसने बतलाया कि किस प्रकार वल्लभसेन ने उसे कैद कर लिया था, परन्तु वह छूट कर वापिस आ गया तथा रानी से पाटन पर चढ़ाई करने की बात करने लगा। रानी शान्त तथा ग्लानिपूर्ण नेत्रों से देखती रही। मुञ्जाल से वार्त्तालाप करने के उपरान्त उसका हृदय अभिभूत हो गया था, अतएव उसने पाटन पर चढ़ाई करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। कह दिया कि मुञ्जाल मेहता पाटन जा रहे हैं। सरलतापूर्वक कार्य हो गया तो ठीक है, अन्यथा पति के साथ स्वर्ग-यात्रा करूँगी। जयदेव महाराजा बन ही जावेगा। सुन कर यति बड़बड़ाने लगा। मुरारपाल ने उसका सिर काट डालने की धमकी दी। रानी ने समझाया, तब वह माना। यति के जाने पर रानी विलाप करने लगी।

त्रिभुवनपाल ने कुछ ही दिनों में अद्भुत शक्ति दिखलाई थी और नगर की व्यवस्था और रक्षा के लिये उचित उपायों से कार्य लेना शुरू कर दिया था। त्रिभुवनपाल चतुर और वीर शासक था, लोग उसे धीर-वीर सोलंकी मानते थे। सब उसे महाराज बनाना चाहते थे, परन्तु उसने स्पष्ट नाहीं कर दी। उसने कहा कि पिता जी ने जयदेव की रक्षा का वचन दिया था, उसे भंग न करूँगा। इसी समय नगरसेठ के आने का समाचार दिया। उदा खेंगार बापू के साथ मुञ्जाल मेहता को लेने गये। त्रिभुवन चबूतरे पर जा खड़ा हुआ। स्वागत के लिये आगे बढ़ा कि याद आया "त्रिभुवन मेरे रिक्त हृदय की आशा को पूर्ण करोगे?" इन शब्दों के स्मरण से वह अभिमानी मंत्री, राजनीतिज्ञ नगरसेठ मुञ्जाल को भूल गया तथा मामा कहता हुआ मुञ्जाल से लिपट गया।

अन्दर आदर से बिठाकर आने का कारण पूछा। मुञ्जाल ने धीरे-धीरे कहा कि वे स्वयं अपने आप आये हैं। पाटन के अग्रणी जनों से वार्तालाप करके पाटन के गौरव की रक्षा करना ही उनका उद्देश्य है। इसके उपरान्त खेंगार, उदा सेठ, वस्तुपाल, त्रिभुवन तथा मुञ्जाल मेहता प्रसन्न सहित ऊपर गये तथा कहने लगे कि पाटन की समस्या सुलझा कर आबू पर्वत पर चले जावेंगे। पाटन वालों की एकता की उन्होंने प्रशंसा की तथा त्रिभुवन का मनोभाव जानना चाहा कि इतनी सत्ता प्राप्त कर, उसे राजा बनने का शौक है या नहीं? त्रिभुवन ने पिता की प्रतिज्ञा दुहरा दी। मुञ्जाल ने कहा कि जयदेव महाराजा बने, त्रिभुवन पाल साथ दे, तभी पाटन का प्रभुत्व फैलेगा अन्यथा नहीं। त्रिभुवन ने कहा कि जयदेव मीनलदेवी के बिना पाटन न आ सकेगा। इस पर मुञ्जाल ने कहा कि मीनलदेवी तो कल सती होने को तैयार हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि पुत्र और माता अकेले पाटन लौटें। चन्द्रावती की सेना वापिस कर दी जावे। खेंगार ने इस बात को पाटन के समस्त अग्रणीजनों के सामने रखे जाने का विचार किया। त्रिभुवन चुप रहा, वह कुछ न बोला। उदा सेठ से नगर में ढिंढोरा पीटने को कहा।

मामा-भानजे अकेले रह गये, तब त्रिभुवन ने कहा कि मीनल देवी के आते ही वह पाटन छोड़ देगा। वह अपने पिता का पुत्र है, उसे अपना वचन प्यारा है। मुञ्जाल ने समझाया। मुञ्जाल ने हंसा की सुन्दरता का तथा उसके गुणों का वर्णन किया और कहा कि यदि हंसा मण्डलेश्वर के साथ रहती तो मण्डलेश्वर की सत्ता बढ़ जाती और पाटनवासी आपस में कट मरते। वह मानवों में शौर्य और उत्साह की अग्नि क्षण भर में उत्पन्न कर देती थी। उसे पाटनवासी सरस्वती का अवतार समझते थे। इससे उसे

मण्डलेश्वर के साथ नहीं रहने दिया। रानी की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, सिर्फ पाटन की आन के लिए मैं बन्दी हुआ, अन्यथा एक क्षण में सबका नाश कर देता। लिए जिसके मैंने बहन-बहनोई तथा अपने आपको मिटा दिया, वह आज तुम्हें सरलता से प्राप्त हो रहा है। तुम्हें मैंने पुत्र के समान समझा। दूर-दूर रहते भी तुम मेरी आँख के तारे थे। प्रति मास तुम्हें एक बार देखने को कितना तरसता था। छिप कर तुम्हें एक बार देख लेता था।

रानी की बुद्धि बदलने के सम्बन्ध में बताते हुए मुञ्जाल ने कहा कि उसने पति की सेना लेकर पाटन पर चढ़ाई करने को भी नाहीं कर दी।

संध्या को यह निश्चय हुआ कि रानी कुमार सहित तथा पाटन के सामन्तों सहित वापिस आ जावें। त्रिभुवन पाल दण्ड नायक, पाटन का दुर्गपाल, वल्लभसेन, सेनापति और उदा तथा शान्तु मेहता मन्त्री बनाये गये। मुञ्जाल वापिस गया तथा समस्त हाल कह सुनाया। विजयपाल सेना वापिस लेकर चन्द्रावती चला गया। सन्ध्या समय रानी विजयपाल के हाथी पर सवार हो पाटन की तरफ कुमार, मुरारपाल, विजयपाल, विनयचन्द्र इत्यादि घुड़सवारों सहित पहुँची। मोढरी दरवाजे पर उदा, खेंगार, वस्तुपाल तथा शान्तु मेहता कुछ सवारों सहित उपस्थित थे। रानी ने मुञ्जाल तथा त्रिभुवन दोनों में से एक को भी न देखा। प्रसन्न भी न दीखी। समरसेन से पता लगाने को कहा। नौकर-चाकर चुपचाप आकर कार्य करते रहे, चहल-पहल न थी। रानी की व्याकुलता और रुद्रता बढ़ने लगी। जयदेव को सुलाकर वह भी सोना चाहती थी कि समरसेन ने आकर कहा कि मुञ्जाल मेहता आने से इन्कार करते हैं और वे आबू जाने की तैयारी कर रहे हैं। सुनकर रानी समर के साथ राजप्रासाद की पिछली खिड़की से चल दी। मुञ्जाल मेहता से वह मिलना

चाहती थी।

रानी के आने का समाचार सुन त्रिभुवन जाने की सोच रहा था। प्रसन्न को बहलाना चाहता था। प्रसन्न जान गई। वह कष्ट सहने को तैयार थी, परन्तु त्रिभुवन को छोड़ने को तैयार न थी। लाचार त्रिभुवन को प्रसन्न को घोड़े पर बिठाना पड़ा और तब दोनों चले। वाचस्पति ने चटपट मुञ्जाल मेहता के पास उदा द्वारा समाचार भिजवा दिया। त्रिभुवन प्रसन्न को लेकर पहले राजमहल से अपने महल में गया, वहाँ प्रसन्न को मर्दाना वेश धारण करने को कहा। उसने वेश बदला। इसी समय पीछे से मुञ्जाल मेहता दरवाजा खोल कर आये। प्रसन्न को देख कर पूछा कि त्रिभुवन के साथ तुम भी जा रही हो? फिर त्रिभुवन पाल को समझाने के लिये प्रसन्न से कह वे जंगल में चले गये। त्रिभुवन आकर बोला, "प्रसन्न चलो, घोड़ा तैयार है।" प्रसन्न को मुञ्जाल मेहता समझा चुके थे। प्रसन्न जाने की उमंग भूल कर उसे भी रोक रही थी। उसने यह कह कर कि वह दण्डनायक की पत्नी बनना चाहती है, त्रिभुवन के दोनों हाथ पकड़ लिये। त्रिभुवन ने "दुष्टा, कमीनी" कह कर हाथ छुड़ाने चाहे। प्रसन्न और जोर से चिपट गई। त्रिभुवन ने जोर से अपने को छुड़ा कर उसे धकेल दिया। प्रसन्न गिर कर एक दम अचेत हो गई।

त्रिभुवन जाना ही चाहता था कि परिचित, पर अधिकार-पूर्ण स्वर "त्रिभुवन" सुनाई पड़ा। वह रुक गया। मुञ्जाल मेहता ने त्रिभुवन को डाटा और कहा जिस बालिका ने बार-बार तुम्हें बचाया, उसी को तुमने यह पुरस्कार दिया? त्रिभुवन ने देखा कि प्रसन्न का सिर फट गया था। "आह मेरी प्रसन्न!" कह कर उसने प्रसन्न को उठा लिया। मुञ्जाल मेहता जल्दी से लीला-धर वैद्य को बुलाने गये।

दो-चार घड़ी के बाद मुञ्जाल मेहता घर पहुँचा। उसका हृदय

शान्त था। रानी आ चुकी थी। जयदेव महाराज बन ही गये थे। त्रिभुवन मान गया था। घर पहुँचने पर देखा कि रानी मीनलदेवी उपस्थित हैं। यह इस प्रकार चौंका जैसे सर्प ने काटा हो। मुञ्जाल को वह रोकने आई थी। मुञ्जाल ने कहा कि उसे जीवन के प्रति कोई स्नेह नहीं है, सिर्फ देश के लिये और अपनी जीवन-भर संग्रह की हुई आशाओं के लिये ही मैंने मेल कराया ा, तथापि हृदय तटस्थ रहा। त्रिभुवन को रोका, परन्तु मन विरक्त हो गया है। अतएव अब यहाँ न रहूँगा।

मीनलदेवी ने पूर्व परिचय द्वारा मुञ्जाल का हृदय जीतना चाहा, परन्तु मुञ्जाल ने स्पष्ट कहा कि उसे इस तरह की बातें पसन्द नहीं। रानी ने कहा कि यदि वह जाने का विचार छोड़ दे तो रानी इस प्रकार का वार्त्तालाप बन्द कर देगी। मुञ्जाल ने शपथ की याद दिलाई कि राज्यकार्यों की बात-चीत के अलावा वे अन्य वार्त्तालाप न करेंगे तथा उनका व्यवहार भाई-बहिन सदृश्य रहेगा, परन्तु रानी ने उस प्रतिज्ञा को आज तोड़ दिया। रानी ने उसे मनाया तथा वचन ले लिया कि वह मीनल को छोड़ कर न जावेगा।

प्रसन्न मृत्यु शैया पर पड़ी है, इस कारण त्रिभुवन ने पाटन छोड़ने का और मुञ्जाल मेहता ने आबू जाने का विचार छोड़ दिया। उदा ने देखा कि राजमहल का कार्य यथा विधि चलने लगा है। उदा समझ गया स्वामिहीन राज्य का सच्चा स्वामी मुञ्जाल आ गया। थोड़ी देर में मुञ्जाल ने सबसे आकर भेंट की। महाराज जयदेव सिंहासन पर बैठे। पाटन हर्षित हुआ। सारे गुजरात में डंका बज गया। यह एकता की नई लहर देख कर दूर-देशीय राजाओं के हृदय में एक अकल्पित-सा भय समा गया। इस एकता से घबराकर मालवराज ने पैर बढ़ाना बन्द कर दिया। सब मण्डलेश्वर समझने लगे कि मुञ्जाल की राजनीति से

उनकी स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी।

त्रिभुवन ने प्रसन्न को मनाया तथा बड़ी धूम से दण्डनायक का विवाह हुआ। स्नेह के कारण कठोर हृदय मुञ्जाल के नेत्रों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

मुञ्जाल और त्रिभुवन मिले। त्रिभुवन ने पूछा कि "मामा अब तो आप खुश हुये?" मुञ्जाल ने कहा, "नहीं! जब पाटन का दण्डनायक अवन्ती से चौथ वसूल करेगा तब राजी होऊँगा!"

रानी होने पर प्रसन्न ने त्रिभुवन को बताया कि जयदेव ने तलवार तानी थी, तब मैंने ही बाण द्वारा उसे बेकाम किया था। त्रिभुवन समझ गया कि पिताजी ने माताजी के पीछे क्यों प्राण दिये थे।

ताम्र चूड़ध्वज सिद्धराज जयसिंह के महान् साम्राज्य का आरम्भ हुआ। स्वार्थ में लिप्त भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का केवल एक ध्येय हो गया। उनके हृदय में एक ही मन्त्र गूँजने लगा।

वह ध्येय, वह मन्त्र था—"जय सोमनाथ!"

*

*

उषा काल

पूना से सासवाड़ को जाने वाले मार्ग पर, संवत् १७७२ विक्रमी की श्रावण कृष्णा दशमी के दिन, रात के समय बड़े जोर की वर्षा हो चुकी थी, और फिर भी वर्षा की सम्भावना हो रही थी। सम्पूर्ण आकाश घनघोर घटाओं से परिपूर्ण था। क्षण-क्षण में विकराल दामिनी दमक-दमक कर गम्भीर गर्जना कर रही थी। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कड़कड़ाहट गुरु गम्भीर नाद कर रही थी मानो किसी विकराल राक्षस का विकट हास्य हो। रात्रि बहुत ही भयावह हो रही थी। ऐसे भयङ्कर समय में कोई मुसाफिर रास्ता चलने का साहस न कर सकता था। परन्तु सुलतानपुर के किले के किलेदार का नवयुवा साहसी पुत्र नाना साहब अपने पिता अप्पाजी राव से क्रोध में रूठकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित अपने एकमात्र प्रिय साथी चित्तल घोड़े पर सवार होकर चला जा रहा था। रास्ते में चार-पाँच मुगल सैनिकों ने उन पर धावा किया, परन्तु वे उन्हें घायल कर निकल भागे। काल-कूट विष के समान दिखाई पड़ने वाले उस अन्धकार में मार्ग के नदी-नालों की कठिनाइयों का कुछ भी विचार न कर वह सवार सरपट घोड़े को दौड़ाता चला जा रहा था। मार्ग भूल गया था। दूरी पर उसने कुछ प्रकाश-सा देखा, अतएव घोड़ा दौड़ाता हुआ वह वहीं जा पहुँचा। उसने देखा कि एक मन्दिर है और मन्दिर के प्राङ्गण में दोनों ओर दो जलते हुये पलीते बुझने पर आ गये हैं।

भीतर हनुमान जी की विशाल मूर्ति स्थापित थी। यहाँ-वहाँ देखा, परन्तु कुछ दिखलाई न पड़ा। अन्त में निराश होकर वह

वहीं जमीन पर लेट गया। इतने में पृथ्वी के गर्भ से किसी के हँसने की आवाज सुन पड़ी। वह विस्मित हो यहाँ-वहाँ उझक कर देखने लगा।

वह हनुमान जी का मन्दिर था। ऊपर से वह सिर्फ मन्दिर था। परन्तु वह पृथ्वी के गर्भ में छिपा एक विशाल गुप्त किला, या तिलस्मी सा तहखाना था। उस मन्दिर मूर्ति के समक्ष यदा-कदा एक बाबा जी दिखलाई पड़ जाते थे। वास्तव में वहाँ उस समय मुगल कालीन• बादशाहों के मराठा सरदारों, किलेदारों के बगावती नवजवान बालक एकत्रित होते थे तथा वहाँ मराठा राज्य किसी प्रकार स्थापति हो, इसकी गोष्ठियाँ होतीं। सैनिक तैयार किये जाते थे। वे किलेदार अपने पुत्रों को दगाबाज, नमक-हराम या दुर्दैव का मारा समझते थे। उस समय के इन मराठा सरदारों का यही ध्यान था कि मराठों का स्वराज्य और मुसलमानों की पराजय असंभव है। उनका उद्देश्य था कि मराठों को अब मुसलमान बादशाहों के दरबार में बड़े-बड़े पद प्राप्त करना चाहिये। कहीं किलेदारी, मन्सबदारी. कहीं सरदारी प्राप्त करनी चाहिये और जीवन पर्यंत "जी हुजूर, जी हुजूर" करते हुये मुसलमानों के दरबार में राज भक्ति का प्रदर्शन करना चाहिये। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नाना साहब के पिता अप्पाजी राव थे। स्वामिभक्ति के समक्ष पुत्र प्रेम नगण्य वस्तु थी। जब बीजापुर के सुल्तान ने नाना जी को दरबार में बुलाना चाहा, तो पुत्र पिता की अवज्ञा कर रात्रि को ही निकल भागा।

परन्तु इन पिताओं के पुत्रगण मुसलमानी अमलदारी से चिढ़ते थे। वे उनके कुशासन से पीड़ित प्रजा का उद्धार करना चाहते थे। उन्होंने अत्यंत निकट रहकर, प्राणों की बाजी लगा कर इस सुदिन के स्वर्ण प्रभात की किरण देखने का व्रत लिया

था। ये सब हनुमान जी के मंदिर में एकत्रित होते और परस्पर विचार विनिमय कर अपने कार्यों को करते। किलेदार इन्हें तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखते। वे उन लोगों को नजर में विशेष रूप से नहीं आते।

इसमें सन्देह नहीं कि नदी का उद्गम बहुत छोटा होता है। और फिर आगे चलकर उसी की बहुत बड़ी नदी बन जाती है। परन्तु यह बात किसी के ख्याल में कैसे समा सकती है कि प्रत्येक जगह से, जहाँ से छोटे-छोटे स्रोत निकलते हैं, वहाँ-वहाँ सभी जगह से महानदी का उद्गम होगा। पर्वत और पहाड़ियों पर न जाने कितने झरने व्यर्थ ही चले जाते होंगे? ऐसा झरना शायद ही कोई होता है कि जो सब रुकावटों को दूर करते हुये और सब झरनों को अपने में मिलाते हुये बराबर जोर ही बाँधता जाता है, और थोड़े ही अवकाश में महानदी का प्रचंड स्वरूप धारण करके मार्ग के कंटकों को हटाते, रोड़ों को बहाते, मनुष्य मात्र का कष्ट हरण करते हुये सबको शीतल करता है।

शाह जी भोंसले के सुपुत्र यशस्वी शिवाजी का प्रयत्न ऐसा ही था। वह समस्त बिखरी शक्तियों को एकत्रित कर कुशासन को नष्ट कर हिन्दू राज्य का सुप्रभात, उसका ऊषाकाल देखना चाहता था। उसका प्रयत्न शुरू हो गया। शिवाजी ही ऐसा झरना था। सूर्याजी, तानाजी, यमाजी तथा नानाजी इत्यादि की शक्तियाँ छोटे झरने थे, जो शिवा रूपी दृढ़ झरने में मिलकर महानदी की प्रचंड धारा का वेग धारण कर रहे थे।

नाना साहब के पिता सुलतानपुर के किले के किलेदार थे। एक छोटा सा गाँव था। गाँव का नंबरदार आबजी पटैल था। रंगराव अप्पाजी चाहते थे कि उनका पुत्र बीजापुर जाकर मनसबदारी का ओहदा प्राप्त करे परन्तु नाना जी को मुसलमानों से चिढ़ थी। साम, दाम, दंड, भेद किसी भी नीति से वे

नाना साहब को न समझा सके। बादशाह की ओर से खरीता और पोशाक आने पर उसे स्वीकार न कर वे चुपचाप किला छोड़ गये। अप्पाजी ने पता लगाना चाहा, परन्तु न लगा सके। वे जिस समय गाँव के पटैल आवजी को नानाजी का पता लगाने का आदेश दे रहे थे, उसी समय बीजापुर से एक लिफाफा आया। अप्पाजी ने सलामत खाँ का लिफाफा लाने वाले से उसका प्रत्युत्तर बाद में देने का वायदा किया। सलामत खाँ धूर्त व्यक्ति था। वह अप्पाजी के नौकरों को घूस इत्यादि का लालच दे मिलाये रहता था। ज्योंही वह बाहर निकला, उसने सर्फोजी नामक व्यक्ति से इशारे से गुप्त भेंट की आकांक्षा प्रकट की, तथा दोनों ने किसी पहाड़ी स्थान पर रात्रि के समय मिलने का वायदा किया।

उनका इशारा तथा मुख्य वार्तालाप श्यामा नामक एक चंचल, परन्तु धूर्त बालक ने सुन लिया। वह आवजी पटैल का मुँह लगा नौकर सा था। नाना साहब के साथ रह कर घुड़सवारी तथा तलवार चलाना सीख गया था तथा उन्हीं विचारधाराओं से उसका मस्तिष्क पुष्ट हुआ था। वह प्रत्येक बात बड़ी सतर्कतापूर्ण दृष्टि से देखता था। उसने आवजी तथा सुभान से उनके गुप्त वार्तालाप का इशारा किया। रात्रि के समय निश्चित समय से पूर्व वे वहाँ जाकर छिप गये। श्यामा बिलकुल ऊपर आकर उनके वार्तालाप के स्थान के समीप एक खोह में घुस कर बैठ गया था।

सर्फोजी तथा मिलने के लिए आने वाले व्यक्ति ने परस्पर वार्तालाप किया, जिसके द्वारा पता चला कि नाना साहब सर्फोजी के बतलाये मार्ग से गये थे। रास्ते में चार-पाँच मुसलमान सवार तैनात थे, जो नानाजी के वहाँ से निकलते समय मार डालने को तैयार थे। उनका ऐसा ख्याल था कि

नाना जी समाप्त कर दिये गये होंगे ? आने वाला कह रहा था कि आज से आठ दिन के अन्दर किला वह जीत लेगा। सुभानजी तथा आवजी इत्यादि को ठिकाने लगा देगा। उनके जाने पर आवजी तथा सुभानजी ने निश्चय किया कि वह जरूर कोई बीजापुर का सरदार होगा तथा षड़यंत्र कर किला जीतना चाहता है। सुभान ने जाकर अप्पाजी से कह दिया। पर अप्पाजी उसके विषय में कोई कड़ा कदम न उठा सके।

नानाजी जब उझक कर आवाज सुनने की चेष्टा कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि हनुमानजी की मूर्ति अपने स्थान से धीरे-धीरे हट कर पुनः अपनी जगह पर ज्यों की त्यों स्थिर हो गई है। वह समझ गया कि यह किसी मन्दिर का द्वार है। बजरंग बली के आसन के मार्ग से निर्भय होकर नीचे घुसा। वहाँ उसे रुद्राक्षमाला धारी एक साधु मिला। नाना जी ने देखा कि गेरुआ वस्त्र धारी वैरागियों के समूह गुप्तचर कार्य करते हैं तथा मुसलमानों की गतिविधि का सूक्ष्म से सूक्ष्म समाचार लाकर देते हैं। वह समझ गया कि ये किसी राजनैतिक उद्देश्य में लगे हुये हैं, अतएव उसने भी उनका अनुसरण करने का विचार करके चेला बनने की इच्छा प्रगट की। बाबाजी नानाजी को पहिचान चुके थे, यद्यपि उसने अपना पूर्व परिचय नहीं दिया था। दूसरे दिन उसने देखा कि दो-चार मनुष्य घोड़े पर बाकी पैदल मन्दिर के प्रांगण में घुसे चले आ रहे हैं। वे सब मराठा सैनिक थे। उनमें एक सरदारी पेशे का बिलकुल नवयुवक घोड़े पर आ रहा था। उसका रंग पक्का था। आँखें बहुत विशाल और तेज से भरी थीं, परन्तु उनकी विशेषता उनकी विशालता में नहीं थी, किन्तु उस अद्वितीय तेज में थी, जो खूब चमक रहा था। उसकी नाक बड़ी, गरुड़ की चोंच जैसी थी। पोशाक बिलकुल सादी थी। एक लम्बा अंगरखा और मराठों

का सा पाजामा पहिने था। सिर पर पगड़ी थी। सारी दिशाओं की घटनाओं को वह अपने चंचल नेत्र घुमा कर एक दम ग्रहण करता जाता था। घोड़ा भी उत्तम जाति का था। वे रात्रि को ही उस निर्जन स्थान में आते थे। वह मराठा सरदार शाहजी का पुत्र प्रतापी शिवाजी था, जो नानाजी के समान ही पिता की अवज्ञा कर मुसलमानों के प्रति विद्रोही भावनायें रखता था। उसे मुगलों से नहीं, परन्तु उनके कुशासन से चिढ़ थी।

मन्दिर के स्वामी श्रीधर महाराज थे। ये सरदार अपने साथियों सहित शाही खजाना लूट कर लाये थे, जिसे उन्होंने वहीं माता भवानी के मन्दिर में जमा कर दिया। यहीं शिवा जी और नानाजी दोनों एक-दूसरे की ओर अत्यन्त स्तब्ध दृष्टि से देख रहे थे—मानो इस प्रकार वे दोनों अपने-अपने नेत्राकर्षण से एक-दूसरे को अपनी ओर खींच रहे थे।

इसके उपरान्त सब भवानी माता के मंदिर के पास गये। उस सरदार नवयुवक शिवाजी ने ज्योंही भवानी माता के आस-पास एक बार परिक्रमा की कि इतने में उसमें तेज आ गया। उसकी पहले की मूर्ति कुछ विचित्र दिखलाई देने लगी। ऐसा जान पड़ा, मानो वह नवयुवक पुरुष अपने आस-पास की सारी बातों से दूसरी ही परिस्थिति में पहुँच चुका था। किसी अन्य वस्तु की ओर उसका ध्यान एक चित्त हो रहा था। दो-तीन बार भवानी माता के समक्ष दंडवत् कर उसने कुछ शब्द मुख से निकाले। वे इस प्रकार थे:—

"संकट आवेगा—पर विनाश न होगा। सावधानी से रहना—यवन प्रबल—कुछ साहस के साथ।"

इसके उपरान्त शिवाजी कुछ देर निश्चेष्ट पड़े रहे। थोड़ी देर में वे अपनी पूर्वावस्था में आ गये। इसके उपरान्त उन्होंने नानाजी को बुलाया। शिवाजी ने अपनी तलवार निकाल

भवानी माता की मूर्ति के समक्ष रख दी तथा नानाजी से वह तलवार उठावा कर उसने यह प्रतिज्ञा करवाई कि "मैं भवानी माता की सेवा में, और ब्राह्मणों का कष्ट दूर करने में अपने प्राण तक निछावर कर दूँगा।" इसके बाद श्रीधर स्वामी ने शिवाजी से उनके उच्चारित शब्द बतलाये। वे परस्पर वार्तालाप कर ही रहे थे कि एक गुसाईं समाचार लाया कि मुसलमानों का एक गिरोह वहाँ आ रहा है। शिवाजी ने मुकाबिला करने का उचित अवसर न जान कर समस्त लोगों को जहाँ का तहाँ वापिस कर दिया। हनुमानजी की मूर्ति पूर्ववत् अपने स्थान पर स्थिर हो गई। बाबाजी अपनी धूनी के पास सीताराम, सीताराम जपते ध्यान में लीन हो गये।

अप्पाजी ने सुभान को विश्वस्त समझ कर ही एक पत्र सूर्याजी के पिता देशमुख के पास भेजा। सूर्याजी भी अपने पिता के विचारों के विपरीत थे तथा नानाजी के सहचर थे। सुभान श्यामा के साथ चला जा रहा था। क्षण-क्षण पर अंधकार उन्हें घेर रहा था और वे भी मानो अंधकार को पीछे हटाने के लिये जी छोड़ कर भाग रहे थे। श्यामा एक होशियार, बुद्धिमान, और चालाक बालक था। वह जानता था कि सुभान महत्व पूर्ण लिफाफा लिये जा रहा है, जिसे दूसरों के हाथ में न पड़ना चाहिये। पगडंडी से रास्ता तय कर वे गोरेश्वर के मंदिर में आये तथा रोटी खाकर उन्होंने रात्रि भर वहीं विश्राम किया। मंदिर में एक दीपक टिमटिमा रहा था! कुछ देर बाद उसके तेल-बाती के समाप्त होने पर उसके समाप्त होने का अवसर आ रहा था। जब उसने देखा कि अब हमारे जागते रहने से कोई लाभ नहीं, तो उसने भी आस-पास के अंधकार में विलीन हो जाना ही उचित समझा। चंद्रोदय का समय समीप था। ऐसे ही समय दो आकृतियाँ, एक पुरुष वेश में दूसरी स्त्री वेश में उस मंदिर

के निकट आई। ये नानाजी की स्त्री चन्द्राबाई और उसकी दासी थीं। चन्द्रा को विदित हो गया था कि मुगल षड्यंत्र द्वारा उसके ससुर अप्पाजी को सपरिवार बीजापुर ले जाने वाले तथा किले पर अधिकार करने वाले हैं। अतएव बेइज्जती के डर से वह दासी सहित निकल कर अपने पिता के गृह की ओर रवाना हुई तथा यहाँ गोरेश्वर के मंदिर में विश्राम किया।

सोने के उपरान्त सुभान श्यामा सहित वहाँ से रवाना हुआ। श्यामा ने देखा कि मुगलों का गिरोह चला आ रहा है। वे चंद्राबाई, सुलतानगढ़, सर्फोजी इत्यादि का नाम उच्चारित कर रहे हैं। सुभान ने समझा विकट प्रसंग आ गया है अतएव सुभान ने श्यामा को लिफाफा भेजने का ठिकाना बता स्वयं किले से वापिस लौट कर अप्पाजी को सचेत करना चाहा। अतएव जैसे ही उसने लिफाफा निकाल कर श्यामा को देना चाहा कि एक मुगल सैनिक ने ललकारा तथा लिफाफा छुड़ाने झपटा। लिफाफा नीचे गिर पड़ा। सैनिक झुककर उठा ही रहा था कि श्यामा शीघ्रता से उठा कर ऐसा चम्पत हुआ जैसे कि बाघिन वधिक के भय से अपने छौने को मुँह में दबाकर शीघ्रतापूर्वक उछलती कूदती हुई चौकन्नी सी चली जाती है। क्रोधित हो उसने सुभान को ही कैद किया तथा मनचाही गालियाँ दे क्रोध शांत करने लगे। यह फौज रणदूलहखाँ के नियंत्रण में अप्पाजी के किले में जा रही थी। अहमद रणदूलहखाँ का स्वामिभक्त, परन्तु बड़ा ही धूर्त दुष्ट नौकर था। छावनी का स्थान उन्होंने गोरेश्वर के मंदिर के समीप चुना। करीमबख्श मंदिर की ओर गया ही था कि वहाँ उसने दो स्त्री पुरुषों को देखा। वे ज्योंही जाने को बाहर निकले कि रणदूलहखाँ ने पुरुष को बुला भेजा। उसकी सुन्दरता पर वह मुग्ध हो गया था। उसने उसको कितने ही बहानाबाजी करने पर न जाने दिया तथा उनके आराम का अलग

H 2344.

प्रबन्ध कर दिया। इसी समय सुभान वहाँ लाया गया। सुभान को देख वह मराठा सरदार (चन्द्राबाई) घबड़ा गई। सुभान आश्चर्य से अत्यन्त चकित होकर घबड़ाकर उन्हें देखने लगा। वह पहिचान गया था कि वह कौन है।

वहाँ हनुमान जी के मंदिर में बाबाजी सीताराम-सीताराम की ध्वनि अलापते हुये धूनी रमाये थे। परन्तु मन ही मन सोचते जा रहे थे कि प्राण रहते यवनों की दाल न गलने देंगे। जब गिरोह पास आ गया, तो उसमें से एक सरदार ने उन्हें गाली देते हुये समाचार पूछा। परन्तु स्वामीजी ने सिर्फ इतना उत्तर दिया कि यहाँ भक्तों के अलावा अन्य कोई नहीं आता। सरदार मंदिर की तलाशी लेना चाहता था। बाबाजी ने मुगल सरदार को अन्दर न जाने दिया। एक मराठा सरदार गया। वहाँ बाबा जी ने उसे कई अपशब्द कहे। उसकी दासवृत्ति को धिक्कारा। यहाँ मुगल साथी ने मराठे साथी की सचाई पर संदेह प्रकट किया। मतलब की वस्तुयें न मिलने पर वे बाबाजी को कैद कर ले चले। बाबाजी ने अन्तिम बार हनुमानजी के मंदिर की प्रदक्षिणा की। तीन-चार बार की प्रदक्षिणा में वे जमीन पर कुछ थपथपा देते तथा अन्तिम बार शीघ्रता से कुछ वस्तु अन्दर डाल उन्होंने प्रदक्षिणा समाप्त की। वह तानाजी तथा शिवाजी के लिये कुछ सांकेतिक इशारे थे। वे मुगल सरदार न समझ सके। उन्हें आश्चर्य जरूर हुआ। इसके बाद बाबाजी सहित वे रवाना हुये।

जिस समय की आख्यायिका का उल्लेख है, उस समय मुगल सरदार मराठा या अन्य सरदार रखते थे। मराठा सरदार राज्य के लिये उपयोगी होते थे, अतएव उन्हें भिन्न-भिन्न कार्य सौंपे जाते थे। बड़े-बड़े उत्तरदायित्व भी उन्हें सुपुर्द किये जाते थे। किन्तु साथ ही उनके जोड़ का एक-एक मुसलमान

सरदार उनके साथ कर दिया जाता था।

विजित और विजेता में परस्पर चाहे जितना भी साख्य-भाव हो, फिर भी विजेताओं के मन के अभिमान, उनके प्रभुतापूर्ण व्यवहार एवं निरंकुशता में लेशमात्र का अन्तर न था। तथा विजित लोगों के मन का असन्तोष उपर्युक्त व्यवहार के कारण कदापि नष्ट न हो पाता। उनके उदण्डतापूर्ण व्यवहार, शासन की दुर्व्यवस्था के कारण महाराष्ट्र प्रजा भी क्षुब्ध हो परित्राण पाना चाहती थी वह दासता में बुरी तरह पद दलित हो चुकी थी। मान मर्यादा-मानापमान सभी समय के थपेड़ों के अनुकूल क्षणमात्र में नष्ट हो जाना सरल बात थी। इसी कारण नवयुवक क्षुब्ध समुद्र की भाँति उसमें उद्वेलित लहरों के समान सामयिक हवा के प्रवाह के अनुसार बह रहे थे और बहने को आतुर हो रहे थे।

जब-जब कोई राज क्रांतियाँ होती रही, तब-तब उसके पूर्ण लक्षण इसी प्रकार दिखाई देते हैं, असन्तोष! असन्तोष! और सो भी जनसाधारण के मन में उत्पन्न होने वाला असन्तोष! बस यही राज्य क्रान्तियों का आदि कारण है।

बाबाजी सरोष दृष्टि से मुगल सैनिकों की ओर देख रहे थे। उनकी नसों में गर्म रक्त प्रवाहित होने लगा था उत्तेजना ने अपना सिक्का जमा लिया था। रुद्र मूर्ति के अवतार हो रहे थे। परन्तु अपना वेश देख उन्होंने अपने आप को सँभाला। यह मन ही मन सोचा, "अभी समय नहीं आया।" मुगल सरदार बाबाजी की यह उग्र मूर्ति देख समझ गया कि यह निरा साधु नहीं है। यह कोई बड़ा चतुर यन्त्र कर्त्ता है।

मंदिर से डेढ़ कोस की दूरी पर एक झोंपड़ी थी। वहाँ इतना सुनसान था कि एक उड़ते हुये घुग्घू के मोटे पंख की फड़-फड़ को आवाज़ के अतिरिक्त अथवा दूर पर गिरे हुये सूखे पत्तों के

कुछ न सुनाई पड़ता था। वहाँ जीवाजी था। अंत में एक सरदार आया। उसने चार घोड़े लाने का शीघ्र आदेश दिया। नानाजी, शिवाजी, एसाजी तथा श्रीधर स्वामी चार व्यक्ति थे। उन लोगों को स्वप्न में ख्याल न था कि बाबाजी कैद हो जावेंगे। शिवाजी तथा तानाजी एक ओर को चले। रास्ते में यमाजी मिले। शिवाजी ने उसके चातुर्य्य,कर्त्तव्य दक्षता की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा बाबाजी पर नजर रखने का आदेश दे चले गये तथा तीन दिन के अन्दर उन्हें छुड़ाने का वायदा किया। यमाजी शिवाजी के जाने के उपरान्त झोपड़ी में गया तथा जोगिन का वेश धारण कर चला। वह सोचता जा रहा था कि शिवाजी पर जरूर भवानी माता की कृपा है। निष्फलता के लिये उनका अवतार नहीं हुआ है।

जब रणदूलह खाँ के सैनिकों ने सुभान को कैद किया, उस समय श्याम पत्र उठाकर अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक भागता-भागता देशमुख के ग्राम के निकट पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि मारकाट मची है। देशमुख को कैद कर लिया गया है। वह अत्यन्त तीक्ष्ण दृष्टि वाला प्रत्युत्पन्न मति का बालक था। उसने शीघ्र ही स्थिर कर लिया कि वह क्या करे, क्या नहीं। वह अत्यन्त भूखा था, परन्तु इस दृश्य को देख उसकी भूख हट गई थी तथा उसका कोमल हृदय दुःख और ग्लानि से भर गया था। देशमुख की दशा देख उसने सूर्याजी उनके पुत्र को पत्र देना स्थिर किया। सुनसान होने पर वह अन्दर गया। देखा सूर्याजी घायल पड़े हैं। एक मुगल सरदार उनकी बेहोश स्त्री को लपेटकर ले जाने की तैयारी में था। छोटा सा बच्चा रो रहा था। वह उसे पैरों से कुचलना ही चाहता था कि श्याम ने उसी सरदार की तलवार उठा उस पर जोर से वार किया तथा अपने छोटे-छोटे हाथों से उसे तब तक मारता रहा जब तक कि वह शून्य न

हो गया। उसके बाद सूर्याजी के समीप गया। वहाँ शीघ्रता से पानी लाकर वह सूर्याजी को होश में लाया। सूर्या जी के अपने माता पिता स्त्री के विषय में पूछने पर उसने सारा समाचार बतलाया। सूर्याजी उसे अपने स्त्री बच्चे को एक सुरक्षित स्थान पर ले जाने का आदेश दे पुनः बेहोश हो गये। सूर्याजी की स्त्री उस सैनिक सरदार के आक्रमण करते ही बेहोश हो गई थी, तथा उसके मस्तिष्क पर उक्त घटना का इतना प्रभाव पड़ा कि वह चेतना न प्राप्त कर सकी। श्यामा ने पानी का लोटा सूर्याजी के पास रख दिया तथा उनके बतलाये स्थान से घोड़ा तलाश करने गया। सूर्याजी ने पहिचान के लिये अपना तावीज तथा कटार दे दी थी। घुड़साल के पास घास के ढेर में सूर्याजी का नौकर छिपा हुआ था तथा अन्य दो मनुष्य और थे। उन दो मनुष्यों की सहायता से श्यामा सूर्याजी की पागल स्त्री बच्चे को ले सूर्या जी के बतलाये स्थान पर ले जाना चाहता था, परन्तु वह न मालूम कहाँ चली गई थी। अतएव अकेला वट वृक्ष के नीचे पहुंचा। वहाँ एक वृद्ध मनुष्य मिला। श्यामा ने उनसे समस्त हाल कहा तथा निशानी बतलाई।

मुगलों ने सूर्याजी के गृह में आग लगा दी थी। मनुष्य तमाशा देख रहे थे। अन्दर जाने की किसी की हिम्मत न पड़ती थी। इसी समय एक मनुष्य घोड़े पर आया। वह बेतहाशा घोड़ा दौड़ाता आया था। वह उसी वृद्ध का भेजा काला कलूटा मनुष्य था। वह एकदम से अन्दर गया, देखा सचमुच एक स्त्री बेहोश पड़ी है। उसके पास का बच्चा भी उसी हालत में पड़ा है। उसने उस स्त्री-बच्चे को उठाया तथा शीघ्रतापूर्वक बाहर निकला।

यहाँ पर मुगल सैनिक बाबाजी को कैद कर पुरन्दर के किले में ले गये थे तथा एक कोठरी में बाबाजी को कैद कर लिया

था। प्रातःकाल का समय था। सूर्य नारायण धीरे-धीरे उदयाचल से ऊपर की ओर अग्रसर हो रहे थे। बाल रवि की अरुण आभा चारों ओर बिखर रही थी। उनकी लाल रंग की, अनुराग की आभा से किला सुशोभित हो रहा था। ऐसे ही समय में बाबाजी यहाँ से वहाँ उद्विग्न घूम रहे थे। हनुमान के उस मंदिर से यह किला बिलकुल निकट था। उस मुगल सरदार ने बादशाह को इस आशय का पत्र भेजा कि एक गुसाईं को कैद किया है। उससे शाहजी के बागी उपद्रवी लड़के की भयंकर कार्यवाहियों का पता लगने की पूरी संभावना है। वह मराठा सरदार चुप था। कारण, वह अशक्त था। यदि कुछ उद्योग करता तो अविश्वसी घोषित होता। जब बाबाजी ऐसे ही उद्विग्नता से घूम रहे थे, तब उन्हें अचानक किले के नीचे ढफ सा बजता सुनाइ पड़ा। ज्यों-ज्यों आवाज निकट आती गई, उनकी उत्कंठा बढ़ती गई तथा वे स्पष्ट समझ गये कि उन्हीं के परिचित व्यक्तियों में से हैं। इस बात का विश्वास होते ही उनके चेहरे पर उल्लास छा गया।

ऐसे ही समय में एक पहरेदार आया। वह मराठा था, उससे पता चला कि एक जोगिन ही डफ बजा रही है। इतने में किलेदार स्वयं आया। उसकी अवस्था ने तो बुढ़ापे की छाया उसकी सूरत पर डाली ही थी, किन्तु उसके गालों पर जो झुर्रियाँ और गढ़े पड़ गये थे, वे उसकी अवस्था के ही नहीं थे, चिन्ता ने उसकी सूरत पर काफी पराक्रम दिखलाया था। बाबाजी से उसने पता लगाना चाहा, परन्तु कुछ समाचार प्राप्त न कर सका। सच्चा हाल जानने के लिये ही उसकी वह दृष्टि, जो कि दूर से वस्तु देखने में मन्द थी, पर थी बड़ी गहरी और विशेषतः चेहरे की ओर देखने से अंतःकरण में, भीतर बहुत गहरी थी, सो बराबर बाबाजी के चेहरे पर लगी थी! बाबाजी

उस निगाह का अर्थ समझ गये थे। किलेदार बड़ी आतुरता से बाबाजी की उम्र तथा विरागी होने का समय पूछ रहा था। वह एकटक उनकी ओर देख रहा था। परन्तु बाबाजी ने उल्टा-सीधा, दरिद्रता, अनाथ इत्यादि शब्दों का सहारा लेकर विरागी होने का कारण बतलाया। इतने में कोठरी के बिलकुल समीप डफ की आवाज सुनाई पड़ी। बाबाजी किलेदार की उपस्थिति की उपेक्षा कर दरवाजे के बाहर झाँकने लगे। बाबाजी ने बात करते करते एक बार फिर झाँका। जोगिन की दृष्टि भी बाबाजी की ओर गई और उसने अपनी दृष्टि बिलकुल एक विचित्र ढंग से हिलाई तथा धीरे-धीरे पहरेदारों को बकते-झकते चली गई। बाबाजी का आनंदित होना किलेदार ने परख लिया था, परन्तु उसने अपनी व्यग्रता प्रदर्शित नहीं की। सूक्ष्म दृष्टि से यदि किसी ने उस समय उसकी ओर देखा होता, तो उसके चेहरे पर जो सदा से चिंताग्रस्त था, उसको अत्यन्त सूक्ष्म सी विस्मय छाया अवश्य दिखाई दी होती। यही नहीं उसकी दशा उस समय ऐसी दिखाई दी कि जैसे किसी मनुष्य को बहुत देर से किसी बात के विषय में शंका हो, फिर वह अचानक किसी अनपेक्षित घटना के घटित होने से स्पष्ट हो जावे। मुगल सरदार बाबाजी से समाचार प्राप्त न कर सका। इस कारण वह चिढ़ गया। बाबा की उद्दंडता तथा शौर्य का पता वे रास्ते में पा चुके थे। अनएव उनके हाथ पैरों में बेड़ियाँ डालकर उन्हें किले की दीवाल से ढकेल कर मार डालने का आदेश मुगल सरदार ने दिया।

शिवाजी वगैरह श्रीधर स्वामी के पकड़े जाने के कारण अत्यंत व्याकुल थे। एक घने जंगल में जा रहे थे, जहाँ रास्ता निकलना अत्यंत असम्भव था। शिवाजी साथियों सहित कम्बल बिछाकर बैठे थे। वे अधिक दुखी थे तथा गहरे विचार में निमग्न थे। जोगिन द्वारा उन्हें श्रीधर स्वामी का पूरा-पूरा समा-

चार मिल गया था। नानाजी ने श्रीधर स्वामी को छुड़ाने का विचार प्रकट किया परन्तु शिवाजी ने स्वयं जाना निश्चय किया। वे बोले "स्वामी के समान सत्पुरुष की हमारे पीछे ऐसी दुर्दशा हो, इससे अधिक लज्जा की बात क्या है! फिर उन्होंने आज तक हम पर उपकार किये हैं। सलाह मशविरा दिया है। भवानी माता ने, जिस दिन वे पकड़े गये हैं, मुझसे कहा था कि स्वामी-जी का बाल बाँका न होगा। हाँ, प्रयत्न भारी करना पड़ेगा।" इतने में यमाजी ने आकर समाचार दिया कि बाबाजी को आज रात्रि को हथकड़ी बेड़ियों सहित कोट पर से ढकेल दिया जावेगा। यह सुन शिवाजी ने तुरन्त अश्व पर आरूढ़ हो साथियों से सवारी करने को कहा तथा रास्ते में आगे के कार्य-क्रम का विचार बतलाते गये।

उसी दिन शाम को दो बुड्ढे बुड्ढी घसियारा तथा घसियारिन घास ढोकर पुरन्दर के किले में गये। बुड्ढा घसियारा अंधेरा होना देखकर बुड्ढी सहित किले की घुड़साल में गया। वहाँ बुड्ढा बोझा उतार कर रोटी के बदले घास देने को तैयार हो गया। बुड्ढी ऊपर जाने की जिद करने लगी। घसियारा उसे गाली बकने लगा। वह भी बकने लगी। पहरेदारों ने रोका, परन्तु न मानी तथा उन्हें गाली सुनाती। ऊपर से कहती, अच्छा लो, मुझे ढकेल दो, मार डालो इत्यादि प्रकार से अपना बचाव करती ऊपर गई। बुड्ढे नेप टैल से दीन वाणी में याचना कर खाना तथा सोने की जगह माँग ली। कोई भगाता, तो कहता, बुड्ढी को आ जाने दो भइया, फिर चला जाऊँगा। इसके बाद लोगों को छकाने के उद्देश्य से उल्टी सीधी डफली बजा लावनी गाने लगा।

बुढ़िया ऊपर चढ़ती गई। अंत में घुड़साल में जा पहुँची। अधिकारियों को घास देकर रोटी पानी की सुविधा कर वहीं सो गई। इसी प्रकार रात्रि व्यतीत होने लगी। मुगल

सैनिक श्रीधर स्वामी को गालियाँ देते हुए उन्हें तंग करने लगे। वे सोच रहे थे तथा खिन्न हो रहे थे कि अब अंत समय निकट है। जिस प्रकार पिंजरे में पड़े शेर की अत्यंत हीन दशा हो जाती है, उसी प्रकार बेचारे बाबाजी की भी हो रही थी। मुगल सरदार चिल्ला रहा था। इस वैरागी को ढकेल दो, इसके मुख में गो-माँस डालो इत्यादि-इत्यादि। किलेदार सीधा था। उसे बाबाजी के प्रति किये गये व्यवहारों से दुःख हो रहा था, परन्तु वह लाचार था।

जब बाबाजी को कोट पर ढकेलने ले गये, तो किलेदार उबल पड़ा तथा सर्जेखाँ पर तलवार लेकर दौड़ा। परन्तु लोगों ने बीच-बचाव किया। सिपाहियों से जंजीर लेकर बाबाजी को जकड़ने का हुक्म दिया। मुसलमान सिपाहियों के अतिरिक्त दूसरे सिपाही आगे न बढ़े। ऐसे ही समय में घुड़साल के पास का घास का ढेर जल उठा। बाबाजी की वध-क्रिया देखना छोड़ सब भागे। इतने में एक प्रकरण और हुआ। जिस स्थान पर सर्जे खाँ ठहरा था, वह भी जल उठा। सभी प्रमुख स्थानों पर अग्नि देव की कृपा हो गई थी। चारों ओर हाहाकार मच गया था। इतने में कोट के नीचे से एकदम मशालें जलती दिखाई दीं। खाँ साहब के सिपाही बाँध दिये गये। बाबाजी को जंजीरों से मुक्त करने का सुअवसर भी अच्छा हाथ लगा। सब किले-निवासी अग्नि बुझाने में लीन थे। बाबाजी सारी लीला देख कर स्तब्ध थे। एक मजबूत आदमी ने उन को कंधे पर चढ़ाया तथा बाबा जी बाद में जिस मार्ग से आये थे, वहीं से चले गये। सर्जेखाँ के अत्यन्त हीनदीन बनकर प्रार्थना करने पर उसे छोड़ते गये थे। परन्तु जिस जंजीर से बाबाजी बंधे थे, उसे उसी जंजीर से बाँधते गये थे। लोग इसी चिंता में पड़े थे कि नीचे की बस्ती और ऊपर के किले में एक साथ आग लगी, तो लगी कैसे! अब लोगों

को खाँ साहब के घोर कर्म की और बाबाजी की याद आई। किलेदार साहब बाबाजी के लिये चिंतित थे। तलवार लेकर कोट की तरफ चले कि बाबाजी की जितनी रक्षा हो सकेगी, करूँगा। परन्तु देखा कि बाबाजी के स्थान पर सर्जेखाँ जंजीरों से जकड़ा बिलख रहा है। जोर से आदमियों को पुकार कर बंधन-मुक्त कराया। सर्जेखाँ हनुमान का मंदिर गिराना चाहता था, परन्तु किलेदार और शिव देव राव के विरोध के कारण रुक गया। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ था, इसलिये नमक मिर्च लगाकर समस्त हाल बादशाह के समक्ष कहूंगा, ऐसा सोच वह किले से चल दिया।

बाबाजी को लेकर वे निश्चित स्थान पर आ पहुँचे। परसों रात को मिलने का वायदा कर वे सब यहाँ-वहाँ चले गये। श्रीधर स्वामी तथा शिवाजी के अन्य साथी यमाजी भी गुफा द्वारा पुनः उसी मंदिर में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार यमाजी तथा शिवाजी घसियारा घसियारिन बन कर गये तथा आग लगाने का कांड रच कर उन्हें छुड़ाया। प्रथम उन्होंने पुरन्दर का किला जीतने का निश्चय किया, परन्तु किलेदार शिवाजी के पिता का मित्र था, इससे इस पर से विचार हट कर मुलतानपुर के किले पर गया। नानाजी सहमत हो गये। इतने में एक गुसाईं ने आकर कुछ समाचार तानाजी को दिया। तानाजी ने बाबाजी को सुनाया। सुनकर वे कुछ त्रस्त तथा खिन्न से हो गये तथा नानाजी को बतलाया। सुनते ही नानाजी पिता पर बड़बड़ाने लगे तथा कहने लगे कि वे स्वामि-भक्ति के आगे मुझ पर तलवार चलाने में भी न चूकेंगे। अप्पाजी को रणदूलहखाँ बादशाह की आज्ञा के अनुसार कैद करके बीजपुर ले गया था। रणदूलहखाँ का अप्पाजी से मित्रता का बर्ताव था, इसलिये उसने उनका किसी प्रकार का अपमान ना हो, इस बात का ध्यान रखा। नानाजी चिंतित थे कि पिताजी

के साथ पत्नी को भी पकड़ ले गये होंगे। उसका भी अपमान किया होगा, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि वह एक दिन पूर्व ही दासी सहित अपने पिता के समीप चली गई थी। नानाजी ने पिता की रक्षा के हेतु जाना चाहा, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि तेरा अपमान इनका अपमान है, अतएव ये सब तुम्हारा साथ देंगे। स्वामीजी ने चारों ओर का पता लगाने के लिये साधु-सन्यासियों के झुंड के झुंड तक छोड़े थे, जो प्रत्येक घर का विवरण आकर देते थे।

नानाजी के जगह छोड़ने के उपरान्त बादशाह ने रणदूलहखां अप्पाजी को लेने भेजा था। वह सद्‌गुणी था, सद्‌गुणों की कद्र करता था। उसने किलेदार से उनकी प्रतिष्ठा तथा इज्जत बचाने का वायदा किया, तथा यह भी कहा कि जिस तरह आप आवेंगे, उसी प्रकार आपको वापिस करा दूँगा। उसने अपना खेमा किले के बिलकुल नीचे लगवाया था तथा वहीं पर उस मराठा नवयुवक का भी, जिसपर वह मुग्ध हो गया था। उसने जबरदस्ती उस मराठा युवक के नाहीं करने पर भी उसे सरदार बना दिया था। वह बिचारा विचारमग्न उदास था। उसपर रणदूलहखाँ ने इस कारण पहरा रक्खा था कि वह छोड़ कर भाग न जावे।

किले के लोग शंकित थे कि देखें क्या हलचल होती है? परन्तु कुछ न हुआ। रणदूलहखाँ तथा अप्पाजी दोनों खुश थे। खाँ साहब ने अप्पाजी के पास से वापिस आते ही नये सरदार साहब को मिलने को बुलाया। वह बड़े अदब से दूर बैठ गया। परन्तु रणदूलहखाँ ने उसे समीप बिठाया तथा अप्पाजी के साथ हुई बातों का उल्लेख करने लगे। जब नानाजी का उल्लेख आया, तो खाँ साहब ने देखा कि सरदार का ध्यान बँट जाता है। जब रणदूलहखाँ ने सरदार को अप्पा साहब से मिलाने को

कहा, तो उसने स्पष्ट नाहीं कर दी तथा बहाना बतला दिया। रात्रि को कई बार उनकी इच्छा सरदार मित्र से वार्तालाप करने की हुई, परन्तु उन्होंने अपनी इस प्रकृति को रोका। अहमद स्वामी की दशा देख रहा था। रणदूलहखाँ को निद्रा न आ रही थी, अतएव वे टहल रहे थे तथा पैर बार-बार सरदार की सवारी की ओर बढ़ते, परन्तु वह अपने को संयत कर लेता। अहमद उसकी उद्विग्नता का कारण समझ गया था। अहमद के यह कहने पर कि उसे इतना बेचैन होने की क्या आवश्यकता ? उस सरदार को बुलाना हाथ की बात है। रणदूहलखाँ सुनते ही आग-बबूला हो गया तथा भविष्य में उसे इस बात पर वार्तालाप करने की सख्त मनाही कर दी। बीजापुर जाकर उसने अपने नवीन मित्र को अलग ठहराया। खाँ साहब ने किलेदार अप्पाजी के ठहरने का भी उत्तम प्रबंध कर दिया। बादशाह का ध्यान था कि अप्पाजी ने ही नाना साहब को भगा दिया होगा, इसीलिये उन्होंने उनके किले का अधिकार छीन लिया था। सैयदुल्लाखाँ अप्पा साहब से चिढ़ता था। उसने ही बादशाह का मन उसके विपरीत भरा था, परन्तु भाग्यवश उसे न भेज रणदूलहखाँ को भेजा गया। रणदूलहखाँ को बादशाह जानता था। उन पर मुरार जगदेव तथा रणदूलहखाँ का अच्छा प्रभाव था, परन्तु सैयदुल्लाखाँ अपना प्रभाव भी बादशाह पर डालता जा रहा था। वह एक निम्नकोटि की सरदारी पा गया था, अतएव वह नीच प्रवृति का सरदार था। वह नाना साहब की स्त्री चन्द्रावती को हथियाना चाहता था, परन्तु रणदूलहखाँ ने उसके समस्त मन्सूबों पर पानी फेर दिया था। वह रणदूलहखाँ से चिढ़ गया था। पहिले जो खरीता बादशाह का अप्पाजी के पास गया था, उसमें यही लिखा था कि जिस-जिस बात को सैयदुल्लाखाँ, आपसे पूछे,

उसकी पूरी-पूरी कैफियत उसे देना। परन्तु ऐसा न हुआ। मुरारपन्त तथा रणदूलहखाँ का प्रयत्न रहता था कि बादशाही सल्तनत सुचारु ढंग से चले। परन्तु सैयदुल्लाखाँ विपरीत प्रकृति का था। बादशाह अनिश्चित प्रकृति का था। सैयदुल्लाखाँ उत्तेजित करता। मुरारदेव रणदूलहखाँ तर्क पूर्ण प्रत्युत्तर द्वारा उसकी योजना शाँत करते। अतएव सैयदुल्लाखाँ ने बादशाह के बिना जाने ही सासवाड़-धारवाड़ में उपद्रव मचा दिया।

सैयदुल्लखाँ ने प्यारेखाँ तथा सर्जेखाँ के कथनानुसार पुरन्दर के किले का हाल, बाबाजी की गिरफ्तारी का हाल तथा राजा शिवदेव राजा की चुगली नमक-मिर्च लगा कर की। ऊपर से रम्भावती इत्यादि के समान'कई सुन्दर स्त्रियाँ लाकर बादशाह को समर्पित की थीं। बादशाह भोगविलास में लीन रहता। सैयदुल्लाखाँ इसमें सहायता करता, इससे उसकी इज्जत बादशाह की निगाहों में बढ़ गई थी।

जब उस काले मनुष्य ने सूर्याजी की स्त्री-बच्चे को बाहर निकाला, उस समय वे अचेत थे। वह इन्हें लेकर वापिस आ रहा था। वह उस वृद्ध की बेटी थी। वृद्ध वास्तव में उतना वृद्ध न था, जितना दिखाई देता था। ऐसा जानपड़ता था कि वह किसी न किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। अप ही आप सोच रहा था कि ईश्वर की गति कितनी विचित्र है। चार वर्ष में उसकी क्या से क्या दशा हो गई। जिन पुरुषों ने यह हाल किया, उनके हृदय का खून चूसने की प्रतिज्ञा कर ही दोनों संसार में रहेंगे ? यह उनकी प्रतिज्ञा थी। पिता अत्यन्त उत्तेजित था। नवयुवक ने उसको शाँत किया तथा उसे निर्दिष्ट स्थान की ओर ले गया। वहाँ श्यामा स्त्री-बच्चे की सेवा कर रहा था। बच्चा उल्टी सासें ले रहा था। उसका अंतिम समय आ गया

था। उसका अन्त होने पर वे उसे जमीन में गाड़ आये। श्यामा बहुत दुखी हुआ, परन्तु लाचार था। स्त्री का उन्माद कम न हुआ था। वृद्ध शोक से पागल हो रहा था। शोक में प्रतिज्ञा की पूर्ति का प्रलाप और अधिक करता था। सुनकर वह काला-कलूटा पुत्र कह उठा, "दादा, इसकी आप चिन्ता न करें। उस हरामखोर का वध करके तिल-तिल के समान उसके टुकड़े करके उसके रक्त से स्नान करके आपके पास आऊँगा।" इतना कह वह जोर से खिलखिला उठा। वृद्ध बोल उठा, "इतना तुम कर सको, तभी ठीक है।"

सुनते ही युवक की क्रोधाग्नि भड़क उठी। क्योंकि इन शब्दों को सुन वह निराला प्राणी बन गया। तथा तीन माह के अन्दर उसे मार डालने की अवधि माँग वहाँ से चला गया। श्यामा रोगियों की सुश्रूषा के हेतु अपनी माता को लेने चला गया। श्यामा के जाते ही वृद्ध को कुछ अन्य मनुष्य की आहट मिली, अतएव श्यामा के आने की राह न देख वह सरबाजी सहित बीमारों को ले अन्य स्थान पर चला गया। जब श्यामा वापिस आया, उसे झोंपड़ियाँ खाली मिलीं।

नाना साहब के हाथ से किला छीनना उन्हें उचित न मालूम पड़ रहा था। जब रंगराव अप्पा के हाथ से बादशाह ने किला छीना, तो उन्होंने जीतने की तैयारी करना शुरू कर दी। सुलतानपुर का किला उनके सर्वथा उपयुक्त था। शिवबा के निज के इलाके से भी वह किला पास था। इसके सिवाय किले के आस-पास का बहुत सा भाग शिवबा की वर्त्तमान परिस्थिति के अनुकूल था। उन्हें उस किले को प्राप्त करने की पूर्ण इच्छा थी। उनका पक्का निश्चय था कि माता भवानी की अनुकूलता के बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता। उन्होंने बाबाजी तथा अन्य लोगों को शान्त रहने को कह स्वयं माता की एकाग्र चित्त

से उपासना की।। वे दूसरे लोक के प्राणी से दीखने लगे। निश्चेष्ट से हो गये तथा मस्तक माता भवानी के चरणों से जा भिड़ा तथा इन शब्दों का उच्चारण किया—"सावधानी के साथ उपक्रम करने से सफलता अवश्य!" मंदिर के तोरण हिल उठे। इसके बाद राजा शिवाजी शान्त हो गये। स्वामीजी ने आनन्दित हो उन्हें उन शब्दों का अर्थ समझाया। यवनों ने जिन मन्दिरों का उच्छेद किया उनकी पुनः संस्थापना उसे करनी होगी। बाबाजी ने समझ लिया था कि अब हनुमानजी का मन्दिर श्रेयस्कर तथा सुरक्षित नहीं है। बाबाजी चिंताकुल थे। स्नान इत्यादि से निश्चिन्त होने पर उन्हें अन्य साधु के दर्शन प्राप्त हुये। वह समर्थ स्वामी का पत्र लाया था। उन्होंने उसकी वन्दना कर उसे पढ़ा। स्वामीजी ने प्रत्युत्तर में जो पत्र लिखा, उसमें अपने पकड़े जाने से अब तक का सम्पूर्ण हाल लिखा। शिवाजी के पराक्रम का हाल था। स्वामीजी ने पुनः अपना लिखा पत्र पढ़ा। उस समय उनके मुख से ये उद्गार निकले, कि वाह शिवा! तुमको धन्य है, जो तुझ पर ऐसे महात्मा का प्रसाद है। मैं तो केवल त्रिमिदम्यान् हूँ। परन्तु तू और वे कृष्णार्जुन की जोड़ी है, जोकि उच्छिन्न होने वाले धर्म की संस्थापना के लिये इस आर्यभूमि में अवतीर्ण हुये हैं। ऐसे महात्माओं की कृपा पर और तेरे समान सदिच्छय होने पर फिर संसार में असमर्थ क्या है।—यह पत्र उसी दिन चला गया।

इसमें सन्देह नहीं कि मुहम्मद आदिलशाह के जमाने में बीजापुर उन्नति के अति उच्च शिखर पर विराजमान हो रहा था। परन्तु साथ ही अवनति के गर्त्त की ओर भी प्रयाण करने लगा था। अन्तःपुर में विलासिता में वह रात-दिन निमग्न रहता। सैयदुल्लाखाँ के प्रयत्नों से उसे रम्भावती

नामक युवती जघन्य कारस्तानियों द्वारा प्राप्त हुई थी। दूसरे सैयदुल्ला सरीखे सरदारों की अब बादशाह से पटती थी। बादशाह के शासन के प्रारम्भिक काल में राजा शाहजी भौंसले तथा मुरार जगदेव ने राज्यवृद्धि के लिये बहुत प्रयत्न किया तथा उसमें सफलता प्राप्त होती गई। मुहम्मद आदिल शाह को प्रजा भी चाहती थी। वह नौरोज़ तथा जन्मदिवस पर बड़े-बड़े उत्सव करता। प्रजा को दानदक्षिणा देता। यदि किसी की शिकायत उस तक पहुँचती तो ठीक-ठीक न्याय कर देता था। पर उस तक फरियाद पहुँचना मुश्किल था। इससे अधिकारियों को नानाप्रकार के अत्याचार करने का सुअवसर मिलता था।

मुहम्मद आदिलशाह कुछ अस्वस्थ था। वह अपने सुसज्जित कक्ष में लेटा था। सैयदुल्लाखां रणदूलहखां की शिकायत कर रहा था। बादशाह को रणदुल्लाखां के उच्चवंश तथा उसकी ईमानदारी का ख्याल था। अतएव सैयदुल्लाखां को पन्द्रह दिन का अवकाश दिया कि वह उसकी बेईमानी सिद्ध करे, अन्यथा वह दंड देगा। सैयदुल्ला खां वहाँ से हट रंभावती के पास गया। उसके द्वारा वह अपना कार्य निकालना चाहता था। रंभावती सैयदुल्लाखां से चिढ़ती थी। उसीके द्वारा उसका सतीत्व नष्ट हुआ था। परन्तु ऊपर से वह उससे बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रखती थी। उसको बड़ी-बड़ी यातनायें देकर ही बादशाह अपने प्रभाव में ला सका था। बादशाह के पास सिर्फ रम्भावती या सुलताना बेगम ही आ सकती थीं। रंभा का बादशाह पर, बेगम साहिबा से अधिक प्रभाव था। बादशाह के मन में रणदूलहखां के प्रति द्वेष उत्पन्न कराने का भार रंभा पर डाल वह चला गया। इधर रंभा बादशाह के बुलाने पर उसके सन्निकट आई। वह इस पतित जीवन का

अन्त करना चाहती थी, परन्तु श्वसुर तथा पति के प्राणों को संकट में जान, उनकी रक्षा करने के उद्देश्य से उसने इस जीवन का नाश करना उचित न समझा। वह काला-कलूटा मनुष्य जो वृद्ध से तीन माह के अन्दर शत्रु का नाश करने का वायदा कर आया था, इसी रंभा का पति रामदेव था। वृद्ध श्वसुर था। रामदेव को अच्छे पद, किलेदारी का लालच दे सैयदुल्लाखां ने दूर रणक्षेत्र में भेज दिया था तथा श्वसुर को धमका, अध-मरा छोड़ कर उसकी वधू रंभा देवी का हरण कर लाया था। अतएव सैयदुल्लाखां को मृत्यु के घाट उतारना ही उसका उद्देश्य था। सैयदुल्लाखां धूर्त, कपटी था, परन्तु वीर न था। उस मनुष्य को देखते ही उसके होश हवाश उड़ जाते थे, क्योंकि वह यथा स्थान जब कभी सैयदुल्लाखां को धमकी देता रहता कि दो माह के अन्दर इसे अवश्य ही जहन्नम को पहुँचा देगा।

यहाँ शिवाजी की मण्डली सुल्तानगढ़ जीतना चाहती थी, अतएव उन्होंने हथियार इत्यादि एकत्रित करना शुरू कर दिया। उनके पास अस्त्र-शस्त्र तथा अर्थ की कमी न हुई। वीर सैनिक थे ही, वे सिर्फ सुअवसर की प्रतीक्षा में ठहरे थे। शिवाजी का उद्देश्य हिन्दू राज्य की स्थापना का था। श्रीधर स्वामी कुशल राजनैतिक योद्धा थे। वे गुप्तचरों द्वारा समाचार प्राप्त किया करते थे।

जब कभी बाल्यावस्था में शिवाजी बीजापुर के राज-दरबार में जाते थे, वे बादशाह के साथ उद्दण्डतापूर्वक वर्ताव करते थे। सलाम न करना, द्वेषपूर्ण वचन बोलना इत्यादि उनकी आदत थी। अतएव शाहजी ने उनको बीजापुर ले जाना छोड़ दिया था।

इतने में समाचार प्राप्त हुआ कि रणदूलहखां पर बादशाह

सलामत नाराज हैं तथा उन्होंने अप्पाजी को कैद में डालने का विचार किया है।—सुनकर सब स्तब्ध रह गये तथा नानाजी ने स्वयं बीजापुर जाने की इच्छा प्रकट की। परन्तु तानाजी, यमाजी इत्यादि को भी स्वामीजी ने बीजापुर जाने की सलाह दी। शिवाजी ने कुछ सोचा तथा चारों आदमी बैरागी वेश में बीजापुर की ओर रवाना हुये।

रामदेव, रम्भादेवी का पूर्व पति, यही काला मनुष्य साईंजी के वेश में बीजापुर में एक भुतही हवेली में रहता था। साईंजी के वेश में उसका वहाँ काफी मान था। एक दिन संध्या समय रम्भावती जब अपने महल की खिड़की में बैठी हुई अपनी दादी की प्रतीक्षा कर रही थी कि रामदेव साईंजी के रूप में उसके सन्निकट जा पहुँचा। रम्भावती चिल्लाना चाहती थी कि रामदेव ने उसका मुख दबा दिया। बाद में रम्भावती उसे पहिचान गई। रामदेव ने उसे मार डालने की धमकी दी। रम्भा स्वयं उसके हाथ से मरने को तैयार हो गई। उसने धीरे-धीरे अपना समाचार कहा तथा यह भी कहा कि सिर्फ प्रतिशोध की भावना के कारण ही वह अब तक जीवित है। रामदेव ने उसकी बातों पर सहज विश्वास कर लिया। दरवाजे पर थाप पड़ते ही वह दरवाजा खोल उसके पीछे छिप गया। दासी अन्दर अन्धकार देख चिराग लाने की चिन्ता में चली गई। इतने में साईंजी-रूपी रामदेव निकल गया। रम्भा को अचेतावस्था प्राप्त हो गई थी। दाई दासी रामदेव का समाचार प्राप्त करने ही गई थी। रम्भा के होश में आने पर दाई ने प्राप्त समाचार दिया, परन्तु रम्भा ने बतलाया कि रामदेव स्वयं यहाँ आ गया था।

साईंजी एक मस्जिद के पास अपना मियाना छोड़ स्वाभाविक रूप में हवेली में गया। नाना प्रकार के विचार उसके दिमाग में चक्कर काट रहे थे। इस भयावने एकान्त स्थान में

वह इस प्रकार घूम रहा था, मानो कोई परतन्त्र राक्षस हो। इसी समय दरवाजे पर थाप पड़ी। उसने दरवाजा खोल कर देखा, चार परदेशी व्यक्ति हैं और वे वहाँ दो-चार दिन ठहरना चाहते हैं। प्रथम रामदेव ने इन्कार करना चाहा, परन्तु नकारात्मक उत्तर देना व्यर्थ समझ वह कुछ न बोला। उसने नाना साहब को दिये के प्रकाश में पहिचान लिया था। उसने अपने को काफी संभाला तथा मुख से एक शब्द भी न निकाला।

चारों व्यक्तियों में से तीन खा-पीकर सो गये, चौथा पहरा देता रहा। रामदेव बिलकुल स्तब्ध-सा उनका कार्यकलाप देखता रहा। सोते व्यक्ति में से एक व्यक्ति उठा और पहरा देने वाले को सोने के लिये कह स्वयं पहरा देने लगा। यह नानाजी था। रामदेव ने अब नानाजी के पास आकर उससे कहा कि वह उसे पहिचान गया है तथा यह भी कहा कि "आप मेरे विषय में बिलकुल शंका न करें, मैं आपका दोस्त हूँ। जिस उद्देश्य से आप आये हैं, उसी उद्देश्य से मैं आया हूँ।" नानाजी ने उसके शब्दों का विश्वास कर लिया। उसके मन पर उन शब्दों का प्रभाव पड़ा। वह तुरन्त उसके साथ शहर आया। तब उस व्यक्ति ने कहा कि आप अप्पा जी को छुड़ाने आये हैं न? नानाजी सुनकर स्तब्ध रह गये।

बाद में उन्होंने रामदेव का परिचय पूछा, परन्तु वह छिपा गया। उसने इतना आवश्वासन दिया कि वह नाना साहब की रक्षा करता रहेगा तथा प्रतिदिन रात्रि को मिलने का आश्वासन दे चलता बना।

नाना साहब उस विचित्र पुरुष का उक्त विचित्र सम्भाषण सुन बिलकुल ही चकित हो गये थे। "उसका शत्रु तथा मेरा शत्रु एक है। उसने जितना मेरा चित्त दुखाया है, उतना किसी अन्य व्यक्ति का नहीं दुखाया। यह बात वह बिलकुल ही भूल गया है कि एक बार सर्प को दुखाने से सर्प भी जितना वैर अपने

मन में नहीं रख सकता, उतना वैर अपने मन में रखकर इतने ही जोर से मैं उसका दंश करूँगा।"

यह रामदेव का कथन नाना साहब के दिमाग में गूँजता रहा। वे समझ गये कि यह कोई मराठा ही है। प्रथम नाना साहब ने उक्त व्यक्ति का बयान किसी से न बतलाने का निश्चय किया। परन्तु वह धोखा तो नहीं दे गया, यह जान उन्होंने नाना जी से सम्पूर्ण वृतांत कह सुनाया। थोड़ा दिन चढ़ने पर नानाजी तथा तानाजी वेश बदल "अलख, अलख" कहते बाहर निकले।

उनका प्रथम विचार था कि जिस काम के लिये आये हैं, उसकी जितनी जानकारी प्राप्त हो सके, की जावे। अप्पा साहब किस दशा में हैं? दरबार की हालत क्या है? तीसरे हमको अपना अभीष्ट कार्य करने के लिये किसकी अनुकूलता मिल सकती है।

नाना साहब को जिस तरफ की जानकारी प्राप्त थी, उसी तरफ वे भिक्षा मांगने स्वछंद रूप से यहाँ वहाँ घूमने लगे।

लगभग दो घंटे के उपरान्त उन्होंने एक सुन्दर युवा को खिड़की से झाँकते देखा। नाना साहब उसे एक टक देखते रहे। वे भ्रम में पड़े थे। वह युवा और कोई नहीं, उनकी धर्मपत्नी चन्द्रा ही थी, जो गोरेश्वर के मंदिर के पास पुरुष वेश में रण-दूलहखाँ द्वारा पकड़ ली गई थी। बाबाजी एकटक क्या देख रहे हैं? यह सोच कर राहगीरों को आश्चर्य हुआ। वे भी खड़े हो गये। यह देख वह सरदार युवा झरोखे से हट गया। ताना जी नाना जी को विशुद्ध उर्दू में सचेत कर चलने का इशारा किया। वे चल पड़े, परन्तु उनका मन बिलकुल उद्विग्न था। साथियों ने यह ताड़ लिया था।

सम्पूर्ण दिन व्यतीत हो गया, परन्तु नानाजी का पागलपन दूर न हुआ। वे बार-बार उसी महल का चक्कर लगा उसी का

पता लगाना चाहते थे। नानाजी को रामदेव के शब्दों की भी याद आ रही थी। वह वायदे के अनुकूल न मिल सका। इस कारण नाना की चित्तवृति और भी अशान्त हो रही थी। नानाजी से तानाजी ने कारण पूछा। उसने कहा "नाना साहब, आज दो दिन से मैंने अपने मन को अत्यन्त कठिनाई के साथ रोका है। समझा था, तुम कुछ न कुछ बतलाओगे, परन्तु अभी तक कुछ न बतलाया। जिस कार्य के लिए हम हैं, उसकी तरफ तुम्हारा ध्यान नहीं है। तुम्हारी हालत कुछ समझ में नहीं आती। पहिले दिन से तुम्हारी आज की दशा और भी विलक्षण है" तानाजी असन्तुष्ट से थे। तानाजी मालूसरे एक मालवे का सच्चा सीधा-सादा सैनिक था। उसको फेरफार की बातों से मतलव न था। उसे शिवाजी से अत्यन्त प्रेम था। कर्त्तव्य परायणता शूरवीरता उसमें कूट-कूट कर भरी थी। नानाजी ने रामदेव वाली घटना का उल्लेख कर उन्हें बतलाना चाहा कि यदि वह मिल जाता, तो सहायता मिलती। परन्तु तानाजी को सन्तोष न हुआ।

शाम के वक्त नाना साहब बाहर नहीं गये। तानाजी अकेले ही बीजापुर का चक्कर लगाने की सोच निकल पड़े। नाना साहब अकेले थे। रात्रि का अन्धकार बढ़ता जा रहा था। तानाजी तथा अन्य साथियों का पता न था। इससे नाना साहब के हृदय में तरह-तरह की शंकायें उठ रहीं थीं कि क्रुद्ध हो तानाजी छोड़ कर तो नहीं चले गये, इत्यादि। इसी प्रकार उनका मन चक्कर खा रहा था कि किसी ने दरवाजे पर थाप मारी। जब नानाजी उस युवा सरदार के महल के पास चक्कर काटते थे, तब रणदूलहखां के दुष्ट, परन्तु स्वामिभक्त, नौकर अहमद ने उनका रुख परख लिया था। अतएव उसने नानाजी को कैद करना सोच लिया। तथा उसी

योजना के अनुसार एक कागज दरवाजे के सुराख में अटका गया। नानाजी ने देखा, उसमें लिखा था "आज आधी रात के बाद, उत्तर की ओर बरगद की पाँत के पास आवें।" नाना साहब ने समझा कि उसी मराठा रामदेव का होगा। इतने में तानाजी इत्यादि आ गये। नाना साहब ने उनसे कुछ न कहा। तानाजी बतलाने लगे कि आज उन्होंने रणदूलहखाँ, सैयदुल्लाखं इत्यादि के महल देख लिये। अप्पा साहब तथा उस युवा सरदार का भी महल देखा, जिस पर उनका प्रेम हो गया है। तानाजी ने बतलाया कि उस युवा सरदार को रणदूलहखाँ सुलतानगढ़ जाते समय ले आया था। जैसा तुम्हारा प्रेम उस पर हो गया है, उसी प्रकार उसका भी हो गया था। इससे अत्यन्त आग्रहपूर्वक उस युवा की इच्छा के विरुद्ध भी अपने साथ लेता आया है।

नाना साहब अब अत्यन्त घबराहट में पड़ गये, परन्तु निद्रा का बहाना कर लेट गये। रात्रि के निश्चित समय के अनुसार ज्योंही बाहर निकले कि तीन व्यक्तियों ने ऊपर अचानक आक्रमण कर उन्हें बाँध लिया तथा ले चले। नाना साहब वीर जरूर थे, परन्तु इस वक्त परवश हो रहे थे। लगभग एक घण्टे के उपरान्त वे एक महल के पास आ पहुँचे। एक व्यक्ति ने दरवाजे पर थाप दे फातिमा-फातिमा कह पुकारा। वह "कौन अहमद" कह बाहर चिराग लेकर आई। नानाजी को आँखों पर खूब मोटे कपड़े की पट्टी बाँधी तथा तहखाने में ले जाकर डाल दिया।

यहाँ तानाजी नाना साहब के वापिस न आने के कारण चिन्तित हो रहे थे। बाहर जाकर देखा, परन्तु साथी का कोई पता नहीं था। सोच रहे थे कि नाना साहब दो दिन से व्याकुल, उद्विग्न थे। कहीं उनका मस्तक तो नहीं भड़क गया और उस

व्यक्ति के साथ चले गये। निराश होकर बेचारे घर को लौटे। सुबह होते ही बैरागी के वेश में उस नवयुवा सरदार के महल के समक्ष जा पहुँचे। पहरेदारों का हाथ देख उनका भविष्य बतलाने लगे। इस प्रकार वहाँ आसन जमा बैठ गये।

नाना साहब इत्यादि जब से बीजापुर गये थे, तब से शिवाजी तथा श्रीधर स्वामी का चित्त इसी ओर को झुका था। पन्द्रह दिन हो गये थे, परन्तु कोई समाचार न आया था। नाना साहब को बीजापुर के किले की अच्छी जानकारी थी, फिर भी उनका मन अज्ञात आशंका से भर रहा था। इसके उपरान्त सुल्तानगढ़ के किले को जीतने की धुन सवार थी। काम उतना सरल न था। शिवाजी गरीब मावलियों में भी प्रिय हो रहे थे। शिवाजी बचपन से ही विद्रोही प्रकृति के थे। उनके पिता शाहजी तथा कोंडदेव, जिनकी शिक्षा में उनका लालन-पालन हुआ था, सब उनसे असन्तुष्ट थे तथा यदा-कदा धमकीपूर्ण पत्र लिख उन्हें डाँटते रहते थे, परन्तु उनका ध्यान उस तरफ न था। वे अपने प्रयत्नों में लगे थे। उनका विश्वास था कि जिस तरह श्री कृष्णजी ने पाण्डवों की सहायता कर धर्म-राज्य स्थापित करने में सहायता की थी, उसी प्रकार माता भवानी मेरी सहायता करेंगी।

वे उस स्थान की प्रजा के अपने प्रति आदर-भाव की परीक्षा करना चाहते थे कि देखें, वे उनका कहाँ तक साथ देंगे; क्योंकि अब खुल्लमखुल्ला लोगों को एकत्र कर अपनी अपनाई राजनीति का श्रीगणेश करना था। बादशाह के प्रति बगावत का प्रथम चरण था। शत्रु घोषित होना था। सैनिकों की संख्या बढ़ानी थी।

शिवाजी ने धीर गंभीर वाणी में उन्हें बुलाने का अपना उद्देश्य कह सुनाया। उन्होंने मुसलमानी कुशासन पर अच्छा

व्याख्यान दिया। शिवाजी की वाणी में ऐसा ओज भरा था कि एक बार जो सुन लेता, वह मुग्ध हो जाता था। उनकी वाणी में वह माधुर्य था कि साधारण तौर पर भी वे जो कुछ कहते,तो काया-वाचा-मनसा से उनका बतलाया कार्य करने को तैयार हो जाते। उनका मधुर शब्द सुनने को लोग लालायित रहते थे। भाषण के बाद इनाम बाँटा गया। इससे लोगों का उत्साह बढ़ा तथा सौ-दो सौ, क्या पाँच-पाँच सौ आदमियों को लाने का प्रण किया।

दादाजी कोंडदेव तथा शाहजी की इच्छा थी कि वह बगावत के गीत न गाकर बीजापुर सल्तनत का सच्चा स्वामी-भक्त सरदार बने। परन्तु सम्पूर्ण महाराष्ट्र में हिन्दू पद पाद-शाही स्थापित करना ही उसका ध्येय था। दादा कोंडदेव धमकाते रहते थे कि मेरे पीछे शाहजी तक को राजद्रोह का फल भोगना पड़ेगा। धन-दौलत का द्वार सबके नष्ट हो जाने की नौबत आ जावेगी, परन्तु शिवाजी उस पर कोई ध्यान न देते। शिवाजी मन में दादा कोंडदेव के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रक्खा करते थे। बालकपन में उन्होंने उनको उत्तम-उत्तम शिक्षायें दी थीं।

आज दादाजी ने शिवाजी को कुछ कठोर शब्द भी कहे, सत्यानाशी, वंश की बदनामी करने वाला कहा। जागीर का लालच दिया, परन्तु सम्पूर्ण शिक्षा व्यर्थ गई। दो माह से शिवा का संदिग्ध वर्ताव देखकर ही दादा कोंडदेव ने शिवाजी को फटकारा था। आज उन्हें काफी दुःख हुआ था। अतएव उन्होंने कहा कि ऐसे मुगल-सेवी वंश का नाश होना ही उत्तम है, जिसका कि मुख्य ध्येय मुगल बादशाह की सेवा कर उनकी कृपा दृष्टि की आकांक्षा हो। मैं अपने प्रण में लगा रहूँगा, चाहे प्राणों का बलिदान ही क्यों न करना पड़े। यदि मुगलों के

राज्य को धक्का न पहुंचाया, कोई किला न जीता, तो आपको या माताजी को मुख न दिखलाऊँगा। यदि मारा गया, तो आनंद मनाना कि वंश का नाशकर्त्ता मारा गया तथा कोंडदेव को दंडवत् कर चले गये।

दादाजी कोंडदेव आश्चर्यचकित थे। शिवाजी ने आज ही उसके समक्ष मुख खोला था। जीजा बाई भी स्तब्ध रह गईं। उन्होंने शिवाजी के पीछे आदमी भेजे, परन्तु शिवाजी भवानी माता के मंदिर में जा मानसिक अर्चना में लग गये। स्वामीजी जब आये, देखा शिवाजी ध्यानमग्न हैं। वे खुश हो गये। बाद में शिवाजी के मुख से उद्गार निकले "गुरुजनों ने जो कहा, सो तेरे कल्याण के लिये ही कहा। मेरा कृपाप्रसाद न जानकर ही उन्होंने ऐसा कहा है। चित्त में विषाद मत लाओ। तुम्हारे पराक्रम होने पर वे फिर ऐसा नहीं कह सकेंगे। फिर वे उपदेश देंगे कि गौ, ब्राह्मण की सेवा करना ही अपना धर्म समझो, प्रयत्न में अंतर न पड़ने देना। प्रसिद्धि जल्दी प्राप्त होगी। सहायता प्राप्त करने में अंतर न पड़े। मेरी कृपा पूर्ण रहेगी।" बस इसी तरह के कुछ शब्द महाराज ने शिवाजी को बतलाये। तीन दिन तक उपवास करने के बाद भवानी माता की पूजा का मानसिक फल यथेष्ट प्राप्त हुआ। सूर्य का बिम्ब पूर्व क्षितिज पर पड़ते ही उन्होंने दुग्धपान करके त्रिरात्रि उपवास धारण किया। इसके उपरान्त किले को हस्तगत करने की विचार माला शुरू हुई। लोगों से स्पष्ट कह किया गया कि धन की चिन्ता मत करना। तानाजी, नानाजी इत्यादि को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई होगी, इसी पर वे लोग तर्क वितर्क कर रहे थे कि एक मनुष्य कटार सहित पत्र लेकर उपस्थित हुआ। मनुष्य ने आकर शिवाजी को पत्र लाकर दे दिया। शिवाजी ने स्वामीजी के हाथ में थमा दिया। पत्र पढ़ने के उपरान्त सबकी चित्तवृत्ति खिल उठी।

तानाजी ने नानाजी का सम्पूर्ण हाल-अपने समाचार का पूर्ण विवरण भेजा था। अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगे, परन्तु निष्कर्ष कुछ न निकला। शिवाजी की विचार शक्ति अत्यन्त प्रवीण थी। चाहे जितना बड़ा भारी संकट आवे, वे उसके कारण देर तक चक्कर में नहीं पड़े रह सकते थे। यही उनकी विशेषता थी। उस शंका को दूर करने के लिये कोई तद्बीर सोचने के लिये संकट उनका स्पर्श न कर पाते, वे तुरन्त ही किसी न किसी उपाय की योजना करते थे। यह उनके चरित्र की खूबी थी। बस अपने उसी नियम के अनुसार क्षण भर एकाग्र होकर उन्होंने विचार किया और एकदम बोल उठे, "स्वामीजी, नाना साहब के साथ किसी ने दगाबाजी करके पकड़ रक्खा है। किसी को जाना चाहिये, अतएव मैं स्वयं जाऊँगा।" स्वामीजी ने उनके जाने का विरोध किया। बोले, "यदि तुम जाओगे तो बना बनाया खेल मिट्टी में मिल जावेगा। जो सौ-पचास आदमी तुम्हारे लिये जान दे रहे हैं, पाँच-सात सौ के आने की आशा है, सो सब व्यर्थ हो जावेगी। यदि तुम जाओगे, तो मानो सुमेरुमणि का दाना ही छूट जायगा और उसी के आधार से जो अनेक मणि शीघ्रतापूर्वक हम पिरोते जा रहे हैं, सो एक ओर से हम पिरोते जावेंगे और दूसरी ओर उस आधार के न रहने के कारण जल्दी-जल्दी गिरते जावेंगे। इस लिये तुमको अपना स्थान न त्यागना चाहिये, न प्रयत्न छोड़ना चाहिये। जब तक तुम जमे रहोगे, तब तक किसी बात की चिन्ता नहीं। एक नहीं, अनेक नाना साहब तुम्हारे पास चले आवेंगे।"

शिवाजी एकदम स्वामीजी से बोले कि "मेरे स्नेही मुझ पर पक्का विश्वास रखकर प्राणों की परवाह न करके आदेश मिलते ही चले जाते हैं। जब तक उनका दृढ़ विश्वास बना है कि मौका

पड़ने पर उनकी जान के लिये मैं प्राण देने को तैयार हूँ और मोर्चे पर जाने को मैं हर दम तैयार रहता हूँ, तभी तक स्वीकृत कार्य में सफलता की आशा रख सकता हूँ।

जिस तहखाने में नाना साहब को डाला गया था, उस तहखाने के अन्दर प्रकाश का एक लवलेश भी प्रविष्ट होना संभव नहीं था। वे सिर्फ भाग्य का भरोसा किये हुये बैठे थे तथा मित्रवर्गों के लिये जितना व्याकुल हो सकते थे, उतना व्याकुल हो रहे थे। इतनी देर में तहखाने का दरवाजा खुला तथा बड़ी हिचकिचाहट के साथ वह अन्दर आई। यह अहमद की साथिन फातिमा थी। उसे अहमद की इस कार्यवाही से असंतोष था। वह नाना से भोजन नहीं, तो फल इत्यादि खाने का अनुरोध करने लगी। नाना साहब कुछ न बोले। फातिमा चली गई। संध्या समय एक अन्य मराठा स्त्री के साथ आई। दिन को सुअवसर न मिलने से वह न आ सकी थी। फातिमा के कथन में अपनत्व की भावना अधिक थी। नाना साहब का उस पर विश्वास जम गया। उन्होंने उससे पत्र लिखने को कलम कागज माँगा तथा कुछ पूछना चाहा। परन्तु कल का वायदा कर फातिमा चली गई। दूसरे दिन वह स्वादिष्ट भोजन के साथ कागज, कलम दवात लाई तथा मित्र को पत्र लिखने का अनुरोध किया।

नाना साहब ने शीघ्रता से पत्र लिखकर फातिमा को दिया, परन्तु यह न लिख सके कि किसने तथा किस स्थान पर कैद कर रक्खा है? फातिमा मौखिक ही यथा योग्य समाचार देने का वायदा कर तानाजी का पता लेकर चली गई। जब नाना साहब को पता चला कि वे रणदूलहखाँ के यहाँ कैद हैं, तो उनको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। रणदूलहखाँ उनके पिता का परम आत्मीय था। परन्तु यह सोच कर कि समय

पड़ने पर सब कुछ हो सकता है, शान्त रहे।

यहाँ पर नानाजी के साथी बैरागी के वेश में उसी मराठा सरदार के यहाँ आसन जमाकर बैठ ही गये थे। उसी समय सरदार साहब ने उन्हें ऊपर बुलवाया। उसने उनसे अन्य साथी का पता पूछा तथा उनके उस वेश का कारण पूछा: इस पर तानाजी ने उल्टा उसी से पूछा कि आपने मेरे उस साथी को शंकावश कैद कर कहाँ रक्खा है? उनके प्राणों की हानि तो नहीं की?

इतना सुनते ही वह एकदम अप्पाजी से पूछ बैठा, क्या? क्या? आपके साथी को कोई पकड़ ले गया और उसके प्राण ले लिये?—वह अत्यन्त चिंतित होकर पूछ रहा था। दूसरे दिन का आने का निमन्त्रण देकर सरदार साहब ने उन्हें जाने दिया। तीसरे दिन फातिमा ने पत्र लाकर तानाजी को दिया तथा नाना साहब के विषय में जो जानती थी, बतलाया। यह भी आश्वासन दिया कि वह नाना साहब को छुड़ा कर उनके हवाले कर देगी। नानाजी का मन बिलकुल अशान्त था। वे रण-दूलहखाँ की नीति पर विचार कर रहे थे कि पिता को तो सम्मान से रख रहा है और पुत्र को कैद में डाल रक्खा है। तानाजी सोच रहे थे कि इसी युवक सरदार ने कैद करके नानाजी को रखवाया है। बीजापुर के राजनीतिक हालचाल और कार्यवाहियों का उन्हें बहुत कुछ ज्ञान हो चुका था। वे फातिमा के पीछे-पीछे उसके रहने का स्थान देख आये थे।

तानाजी को मक्खियाँ मारते हुये बैठे रहना पसन्द न था। वे बहुत ही पुरुषार्थी और कट्टर दीर्घ उद्योगी पुरुष थे। इनको नानाजी का कैद होना बहुत ही लज्जास्पद लग रहा था। परन्तु फातिमा के अतिरिक्त अन्य सहारा न था। इसी समय वह काला पुरुष आया तथा नानाजी के विषय में पूछने लगा।

तानाजी ने उस पर सन्देह कर उसे विश्वासघाती, दगाबाज इत्यादि कहा।

सुनकर वह चकित सा रह गया तथा नानाजी से तानाजी का पता पूछा, परन्तु उन्होंने न बतलाया। वह तीन दिन के अन्दर उनको लाने का वायदा कर चला गया। सीधा अपने घर पहुँचा तथा विचार करने लगा। वह अपने मकान के चक्कर लगाता तथा सोचता जाता था कि प्रत्येक सरदार की थोड़ी-थोड़ी सभी बातों का उसे पता रहता है फिर इतने बड़े षड्यन्त्र का वह पता न पा सका। अन्त में रणदूलहखाँ पर ध्यान गया। काले मनुष्य को पता था कि वह युवा सरदार तानाजी की पत्नी चन्द्रा है। किस प्रकार वह जाने को व्याकुल है, परन्तु रणदूलहखाँ उसे जाने नहीं देता। अवश्य ही उसी ने नाना साहब को कैद कराया होगा। उसने नौकर से उसकी नीति द्वारा, जिसके द्वारा वह भेद लाया करता था, तानाजी का पूरा पता लगाने को कहा। जबकि यह काम गुप्त रूप से हुआ है, तो उस दुष्ट अहमद ने ही किया होगा। वह कुछ सोच, वहाँ से नाना साहब की खोज में चला।

रणदूलहखाँ राज्य का दृढ़ आधार-स्तम्भ था। बादशाह का उस पर पक्का विश्वास था। वह अप्पा साहब को आदर तथा इज्जत से रख रहा था। सुलतानगढ़ में उपद्रव मच रहा था, ऐसे आशय का पत्र अप्पा साहब के पास आया। वे किले वापिस जाना चाहते थे। यहाँ रणदूलहखाँ जानता था कि बादशाह की मर्जी अप्पा साहब तथा उसके पक्ष में नहीं है।

उसी दिन अहमद ने रणदूलहखाँ को समाचार दिया कि उसने नाना साहब को कैद कर लिया है, क्योंकि कि वह उनके पथ का रोड़ा था। वह उस सुन्दरी को ताक रहा था, जिस

पर रणदूलहखां मुग्ध था। अहमद जानता था कि वह नाना साहब की पत्नी है। रणदूलहखां को विश्वास न हो रहा था। जिस आदमी को पकड़ने के लिये बादशाह का खरीता छूटा, जिसके कारण उसके पिता पर इतना कोप हुआ, क्या वह बीजापुर में वैरागी के वेश में आकर घूमेगा ?

परन्तु अहमद उसे अच्छी तरह पहिचानता था। अतएव उक्त शंका उसके मन से जाती रही। वह बड़े चक्कर में पड़ा। मानसिक अन्तर्द्वन्द से वह निपट न पा रहा था। एक मन होता, जाकर देखे; दूसरा मन होता, कोई जरूरत नहीं, उसको वैसा ही पड़ा रहने दो। इस प्रकार उसके चित्त की व्याकुलता बढ़ गई।

अहमद मालिक के मन की दशा पहिचान गया कि उसका मन स्वयं उसके हाथ में नहीं है। यहाँ चन्द्रा को लेकर सुविचार और कुविचार दोनों उसके मन में उठ रहे थे। उसकी आंतरिक इच्छा थी कि उसके हाथ से कोई बुरा कार्य न होवे। उसने उस प्रलोभन के पाश को दूर हटाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। परन्तु अहमद नीच प्राकृति का था। उसने नाना साहब को मालिक के अनजाने में ही यमलोक भेजने का निश्चय कर लिया। वह अपने मालिक की अशान्ति का कारण स्वयं नष्ट कर देना चाहता था। इसलिये उसने शीघ्र ही कार्य करना चाहा। वह फातिमा से समस्त समाचार कहने को आतुर हो रहा था। जल्दी से उसके सन्निकट पहुँचा। मन की सब बातें बतलाईं, प्रेम प्रकट किया, और अन्त में एक बहुत ही सुन्दर चित्र खींचकर बतलाया कि यदि इस कार्य को हम सुचारू रूप से कर लेंगे, तो हमारा मालिक कितना खुश होगा। परन्तु फातिमा का मन ठिकाने न था। नाना प्रकार के विचार उसके दिमाग में चक्कर काट रहे थे। उसका हृदय दुःख से व्याकुल हो गया। अहमद ने

अपना विचार बतलाया कि वह रात्रि को नाना साहब को मार डालेगा। सुनकर फातमा बिगड़ गई। अहमद उस समय चला गया। सोचा, फातिमा अभी मेरे विपक्ष में है, परन्तु रात्रि तक उसका क्रोध शांत हो जावेगा।

कोठरी की चाबी फातिमा के पास थी। वह उसे घर में न मिली। वह हताश, व्याकुल हो मन मार कर बैठा ही रह गया। दूसरे दिन फातिमा से फिर मिला। तथा पुनः आज रात्रि का वायदा करा लिया। फातिमा ने कह दिया जो तुम्हें करना हो, करना। इधर मालकिन ने फातिमा की दशा देखी। वह बीमारी का बहाना कर चली गई। वह तीसरे पहर से ही न मालूम कहाँ चली गई थी। रात्रि के ग्यारह बजे जब सब सो गये, तो किसी को चुपचाप अन्दर ले लिया। आधी रात के समय अहमद भी उससे मिला। इसके बाद वे दोनों उसी तहखाने की ओर गये, जहाँ नाना साहब कैद थे। उसके पीछे-पीछे एक अन्य व्यक्ति की छाया थी।

नाना साहब अपनी कोठरी में किसी रतौंधी आने वाले मनुष्य की तरह बैठे थे। अर्ध-रात्रि के समय दरवाजे पर खटका हुआ। उनके मन में आशा-निराशा दोनों का संचार हुआ। सोचा, शायद फातिमा आई हो, या अहमद ही खून करने आया हो। यह विचार आते ही वे एकदम खड़े हो गये। देखा, फातिमा तथा अहमद दोनों आये हैं। अहमद बोल उठा कि रणदूलहखाँ ने उसे मार डालने का हुक्म दे दिया है तथा उसकी पत्नी चन्द्राबाई उसके मालिक के पास है। अंतिम शब्द सुनते ही नाना साहब की चेष्टा विलक्षण हो गई। आँखों के सामने अंधकार छा गया। कान बधिर के समान हो गये। हाथ पैरों की शक्ति गलित हो गई। सारा संसार शून्य सा भासने लगा। चारों ओर की दुनियाँ घूमती नजर आई। फिर एकाएक

अहमद के ऊपर नाना साहब टूट पड़े। वह धड़ाम से नीचे आ गिरा, उसके हाथ ऊपर ही ऊपर किसी ने पकड़ लिये थे। नाना साहब उसकी छाती पर चढ़े थे। उसने सहायता के लिये यहाँ-वहाँ देखा, परन्तु यहाँ फातिमा के बदले काला-कलूटा मनुष्य दीखा। नाना साहब उसे धमका कर चन्द्रा का हाल पूछ रहे थे। अहमद घबराहट और डर के मारे उत्तर न दे सकता था। उस काले-कलूटे मनुष्य ने उसका समर्थन किया कि रणदूलहखाँ का ही ऐसा प्रयत्न है। उन्होंने अहमद को मुक्के से बेहोश कर दरवाजे के बाहर कदम रक्खा ही था कि सामने स्वयं रणदूलहखाँ को देखा। रणदूलहखाँ सच्चे मन का था। वह नाना साहब को समझा कर उसकी स्त्री उसे सौंपने के विचार से आया था। अहमद नाना साहब को मार न डाले, इस विचार से वह स्वयं तहखाने की तरफ आया तथा नाना साहब से सामना हो गया। नाना साहब तिरस्कार से उसकी बातों को ध्यान में रख, बातें सुनाने लगा कि तूने भयंकर सर्प की पूँछ पर पैर रक्खा है। कभी न कभी समराङ्गण में सामना करके तेरा मान खंडन कर इस दुष्टता और धूर्तता का प्रतिशोध लूँगा। इतना कह, उस सहायक पुरुष के साथ नाना साहब चले गये।

यहाँ तानाजी बिचलित से हो रहे थे कि कहीं नाना के समान यहाँ की षड्यंत्रकारिता से उनके वे अन्य साथी नष्ट न हो जावें। उनके समान कार्यकर्त्ता और धैर्यशाली पुरुष भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। वे सोना ही चाहते कि नाना साहब उस काले मनुष्य के साथ आकर खड़े हो गये। तानाजी प्रेम-विकल हो उनसे लिपट गये। नाना जी ने कहा कि वे शिवाजी के पूर्णतया अधीन हैं, परन्तु सिर्फ आज ही स्वतन्त्र रूप से रह कर रणदूलहखाँ से बदला लेना चाहते हैं। उस काले

मनुष्य से उन्होंने कहा कि आप आज मेरे पिता से मेरी मुलाकात करा दीजिये। फिर जो कुछ होगा, देखा जावेगा।

समान शील और समान आचरण वालों में ही परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है। इसी कारण नानाजी और उस काले मनुष्य में सरल भाव उत्पन्न हो गया था। उसकी प्रतिष्ठा भंग हुई थी, अतएव कुल-कलंक का परिमार्जन सिर्फ शत्रु का रक्त ही हो सकता था। वह काला मनुष्य नाना साहब से बोला कि आप अपने पिता से भलीभाँति परिचित हैं। आपका जो ख्याल है, वह सर्वथा निर्मूल है। आप कितना भी रणदूलहखाँ के विरुद्ध कहेंगे, परन्तु उन पर कुछ असर न होगा। उन लोगों का परस्पर स्नेह है। उधर वे आपको कैद कर बादशाह के समक्ष पेश कर देंगे। अप्पा साहब के समान कठोर, दृढ़ प्रतिज्ञ और दृढ़ विचार वाला मनुष्य सारे महाराष्ट्र में नहीं है। उनको सिर्फ राजा की नौकरी ईमानदारी व कर्त्तव्यपरायणता के साथ करना मालूम है। पुत्र-प्रेम स्वामि-भक्ति के आगे नगण्य है। फिर आप राजद्रोही हैं। आप इस झगड़े में व्यर्थ के लिये पड़ते हैं। आप लोग वापिस जाइये, कारण वहाँ के कार्य में विलम्ब हो रहा है। आपकी आशा बालू की भीत पर महल खड़ा करने के समान है। परन्तु नाना साहब को विश्वास-सा हो रहा था कि कुल की प्रतिष्ठा का ख्याल आते ही उनकी चित्तवृत्ति बदल जावेगी और फिर वे जितनी दृढ़ता से आज राजभक्ति में लीन हैं, उससे कहीं अधिक दृढ़ता के साथ विरुद्ध पक्ष में मिल जावेंगे। अतएव उन्होंने बारम्बार पिता से मिलने का आग्रह किया। वह काला मनुष्य वचन देकर चला गया तथा थोड़ी देर बाद आकर पुनः बोला कि अच्छा, रात्रि को जिस समय वे एकान्त में होंगे, उसी समय आपको मिला दिया जावेगा। पहर भर रात जाने पर जाने का निश्चय हुआ। पहुँचाने तथा वापिस लाने का जिम्मा

उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। संध्या समय वह उपयुक्त वस्त्र ले उपस्थित हुआ तथा नाना साहब उन्हें धारण कर अप्पा साहब से मिलने गये। नाना साहब को अप्पा साहब से एकान्त में मिलने का सुअवसर मिल गया। नाना को देखते ही वे विलक्षण उलझन में पड़ गये तथा डाँटने लगे कि तू मुँह पर कालिख लगाकर चला गया था, फिर क्यों आया। तथा बादशाह के सामने पेश करने की धमकी देने लगे। नाना साहब अणुमात्र भी न घबड़ाये तथा पिता की स्वामिभक्ति पर टीका-टिप्पणी कर रण-दूलहखाँ ने किस प्रकार उनके ऊपर, उनकी कुल प्रतिष्ठा पर कलंक लगाया है, बतालाया तथा रणदूलहखाँ के रक्त से हाथ रंगने की प्रतिज्ञा दुहराई। अप्पा साहब कुछ बोलने ही वाले थे कि रणदूलहखाँ उसका प्रतिवाद करता आ पहुँचा। नानाजी उसके आदर तथा प्रिय-प्रेम से सने शब्द सुनकर जल उठा। तथा उसको तिरस्कार से देखता अप्पा साहब से बोला, "अच्छा, पिताजी, अब आप अपने इस मित्र को सँभाल कर रखना, इसके रक्त से मैं अपने हाथ रगूँगा, तथा सरपट चला गया। अप्पा साहब देखते रह गये। रणदूलहखाँ ने अप्पाजी से बतलाया कि नाना साहब की वधू एक दासी सहित किस प्रकार पुरुष वेश में अपने मामा के घर जा रही थी कि गोरेश्वर के मंदिर के पास रणदूलहखाँ ने उसे रोक लिया और तब से अब तक वह पुरुष वेश में ही अलग अपनी दासी सहित रहती है। चन्द्रा को यह पता नहीं है कि उसका छद्मवेश रणदूलहखाँ नहीं जानता है। उसने अब तक उसपर किसी प्रकार की कुदृष्टि नहीं डाली।

अप्पा साहब शांत थे। वे उसका कलेजा चूस जाना चाहते थे, परन्तु अपने मनोभावों को छिपा कर बोले, सरदार साहब, आपका क्षमा माँगना शोभा नहीं देता-फिर रणदूलहखाँ ने

नाना साहब के अहमद द्वारा कैद किये जाने, उसके छूट जाने तथा अपने स्वयं उन्हें समझाने जाने की बात कही और बताया कि वह कड़क कर मेरा अपमान करता चला गया। अप्पा साहब ने यह सुनकर पुत्र-वधू को अपने पास बुलाना चाहा। फिर रणदूलहखां ने कहा कि आपके दल का यहाँ से छुटकारा हो गया है, अब आप वहाँ, जाकर अपना कार्य संभालें। इतना कह वह चला गया। दूरणलहखाँ के जाने पर अप्पा साहब की यह सोच कर दशा विचित्र हुई कि अब तो नाना शाहजी के उपद्रवी बालक से मिल गया होगा।

उस दिन जब उनके लिए भूत बन नाना अचानक उनके सामने आ खड़ा हुआ, तब उसे देख कर क्षण-लक्षांशमात्र के लिए आशा की किरण की एक छोटी सी झलक दिखाई दी कि यह क्षमा माँगने ही आया होगा। पर उसकी गंम्भीर गर्जना सुन उनके आशाँकुर पर बिजली गिर पड़ी। दूसरे दिन बादशाह से अप्पा साहब की मुलाकात हुई। तथा उन्हें वापिस जाने का आदेश मिल गया।

यहाँ अप्पा साहब की पुत्रवधू पर से रणदूलहखाँ ने प्रतिबंध हटा दिया था, अतएव वह दासी सहित एक दम गायब हो गई।

नाना साहब पिता के पास से वापिस आकर उदासीन और खिन्न से साथियों के पास जा पहुँचे। नाना साहब की विलक्षण दशा देख उन्होंने ताड़ लिया कि मतलब सिद्ध नहीं हुआ। नाना साहब ने बीजापुर में रह कर बदला लेना चाहा, परन्तु साथियों ने न छोड़ा। तथा समझाया कि बीजापुर छोड़ कर अभी चलो, जिससे शत्रु निश्चिन्त हो जावेंगे। फिर बाद में प्रतिशोध लेना। उस अज्ञान साथी ने भी निज की स्थिति तथा अनुभव का कुछ दिग्दर्शन कराया, तब कहीं जाकर नाना साहब के चित्त में यह बात जाकर जमी। इसके बाद उस अज्ञात मित्र रामदेव ने यह भी बतला दिया कि चन्द्रादेवी अवसर पाकर भाग गई हैं। वह

पतिव्रता साध्वी हैं। निष्कलंक हैं। चारों साथी साथ निकले थे। नाना साहब रामदेव से वर्तालाप करते चले जा रहे थे। बात करते-करते रामदेव निकल गया। नाना साहब ने अपना रास्ता पकड़ा। जिस वृक्ष के नीचे नाना जी ठहरे, वहाँ देखा चन्द्रा भी पुरुष वेश में दासी सहित ठहरी है। दासी ने चन्द्रा की निर्दोषिता का कितना ही प्रमाण देना चाहा, पर वह न माना तथा कहा कि कुछ भी शील होता, तो अब तक प्राण त्याग देना था। इस पर दासी बोली कि अब जब आपको यह विश्वास हो जावेगा कि बाई साहिबा के मुख पर कालिख नहीं लगी, उसी दिन वे आपके समक्ष आवेगी, अन्यथा वे चिता जला कर उसमें भस्म हो जावेंगी। दासी का ऐसा मनोभाव देख उन्हें आश्चर्य भी हुआ तथा एक ओर को चलते बने।

क्रोध के आवेग में नाना साहब वहाँ से चल दिये। मंजिल पर मंजिल तै करते वे पूना के पास के अन्तिम जंगल में आ पहुँचे। तानाजी एक बहुत ही नीतिज्ञ तथा सुदक्ष पुरुष थे। उनका सदैव यह विचार रहता था कि प्रत्येक बात सोच-विचार कर करना चाहिये। वे चकमा देने में भी चतुर थे। एक आदमी को समाचार देने भेज आप नाना सहित गांव की ओर गये। वहाँ शिवाजी और कोंड़देव दादा के झगड़े का तथा उनका रूठ कर जाने का समाचार सुना। कोई कहता बीजापुर गये हैं, कोई कहता वहाँ गये हैं, कोई कहता, हथियार जमा करने गये हैं। समाचार वाला व्यक्ति वापिस आकर बोला कि राजा साहब तथा स्वामीजी यहाँ पर नहीं हैं। पहिले तो सोच पड़ा कि कहाँ हैं, फिर सोचा, हो न हो भवानी माता के मन्दिर ने अज्ञातवास न कर रहे हों!

जब शिवाजी ने बीजापुर जाने का आग्रह किया था, उस समय स्वामीजी ने उनका मन बदलना चाहा। श्रीधर स्वामी

एक अत्यन्त गम्भीर, विचार-शील और कार्यनीति-कुशल व्यक्ति थे। राजा साहब को अकेले बीजापुर जाने देना अपने गुरुवर समर्थ रामदास स्वामी की आज्ञा भंग करना था। उन्होंने राजकौशल से उनको कार्यकौशल की शिक्षा दी—राज्यकार्य का बन्धान और सन्धान करने के लिये प्रत्येक अवसर पर जान को खतरे में डालना कोई लाभदायक नहीं होता। परन्तु शिवाजी का मन प्रभावित न हुआ। अतएव उन्होंने समर्थ गुरु के दर्शन का प्रलोभन दिखाया। शिवाजी की तीव्र इच्छा उनके दर्शन करने की थी। वे दुर्गम जंगलों में विचरण किया करते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य था कि किसी क्षत्रिय वीर द्वारा मराठा राज्य की स्थापना कराई जावे। इस प्रकार उन्होंने सारे महाराष्ट्र में अपने शिष्य सम्प्रदाय को गुप्त रूप से फैलाना शुरू कर दिया था। वे ऊपर से विक्षिप्त तथा अनमने साधु से लगते थे। वे अपने उद्देश्य खास-खास शिष्यों को ही बतलाते थे। परन्तु सर्वदा कोई उनके समीप न रहता था। जगह जगह हनुमानजी की उपासना का प्रचार करते। उपयुक्त स्थान पर अखाड़ा इत्यादि बना कर हनुमानजी की मूर्ति की स्थापना कर लोगों की शारीरिक तथा नैतिक शक्ति बढ़ाते थे। धार्मिक भाव दिखावटी था। असली राजनीतिक उद्देश्य था। इसी प्रकार का कार्य श्रीधर स्वामी करते थे, जबकि उनके दृष्टि-पथ में राजा शिवाजी इत्यादि आये।

शिवाजी को मुगलों से स्वाभाविक घृणा थी ही, इस कारण श्रीधर स्वामी के विचार उनके अन्दर ऐसे अंकुरित हो उठे, जैसे किसी उत्तम बोई हुई भूमि में बोये हुए उत्तम बीज अंकुरित हो उठें। शिवाजी का यह शिक्षण दादाजी कोंडदेव के हाथ में था, परन्तु राजा साहब का ध्यान उस ओर न था। वे बालकपन से साथियों को ले किसी ओर उपद्रव मचाने निकल

जाते। दादाजी की शिक्षा केवल व्यावहारिक दृष्टि की थी कि वे जागीर सँभाल सकें। शिवाजी एक कान से सुनते, दूसरे से निकाल देते।

जब तक अभिलाषित वस्तु प्राप्त नहीं होती, उसका महत्व हमारी दृष्टि में बढ़ता ही जाता है। ऐसी ही दशा राजा साहब की थी; परन्तु स्वामीजी ने एक बार कह दिया था कि रिक्तहस्त से गुरु दर्शन उचित न होगा। कोई प्रांत या किला गुरु-दक्षिणा के रूप में उन्हें देना चाहिये, तभी दर्शनों की सार्थकता होगी। सुन कर शिवाजी रह गये। परन्तु अब स्वयं स्वामीजी उन्हें ले जाना चाहते थे। वे समझ गये कि बीजापुर न जाने देने का ही अंतिम हथियार गुरु-दर्शन है। वे चल पड़े। वे परस्पर वार्तालाप करते जा रहे थे कि एकता, मित्रता, राष्ट्रीय भावना से ही स्वराज्य की स्थापना की जावे, तभी सफलता मिलेगी। श्रीधर स्वामी का राज्य के मुख्य लोगों से परिचय था। आज वार्तालाप द्वारा शिवाजी श्रीधर स्वामी को समझ सके।

धूप देख एक मन्दिर के पास उन्होंने विश्राम ग्रहण किया। राजा साहब अस्वस्थ थे, इस कारण स्वामीजी स्वयं आटा-दाल की खोज में गये। शिवाजी लेटे थे। उन्होंने देखा एक यवन एक ब्राह्मण को तंग कर रहा है। अतएव उन्होंने तलवार मुँह में दबा पानी में कूद पड़े तथा तैरकर वहाँ पहुँचे। उस मुगल का अंत कर वापिस आकर लेट गये। स्वामीजी वापिस आये। उनको लेटा पाया तथा ज्वर की तीव्रता देख उनको उपालंभ देने लगे कि उन्होंने स्नान क्यों किया? तब शिवाजी ने पूरा वृतांत बतलाया। वे समझ गये कि यह हमारी कल्पना से भी अधिक दृढ़ प्रतिज्ञ तथा शूरवीर है। थोड़ी देर उपरान्त वे वहाँ जा पहुँचे। परन्तु मालूम हुआ कि स्वामी समर्थ का पता नहीं है। वे निस्पृह तथा निरहंकार वृत्ति के थे।

हर एक स्थान, गुल्म-लतायें, गुफा कंदरायें खोजीं, पर पता न चला। राजा साहब को उनके दर्शनों की तीव्र इच्छा थी। उन्होंने एक-दो दिन व्यतीत किये, परन्तु कुछ तात्पर्य न निकला। स्वप्न में देखा कि एक ब्राह्मण कह रहा है कि स्वामीजी का तुझ पर अत्यंत प्रेम है। तू शौर्य-धैर्य से कम से-कम एक बित्ता भर जमीन प्राप्त कर, तब तेरे परस्पर संभाषण का समय आवेगा। वे तेरे पराक्रम, उद्देश्य की सफलता के लिये ही उत्तर की ओर बैठे एक गुफा में पुरश्चरण कर रहे हैं। अकेला जा, तुझे दर्शन होंगे, परन्तु संभाषण न होगा—यह कह वह ब्राह्मण गुप्त हो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल बिना श्रीधर स्वामी को बतलाये अरुणोदय के पूर्व ही स्वप्न में ज्ञान प्राप्त किये स्थान की ओर गये। वहाँ उन्हें धीर-गंभीर स्वर आने का भास मिला। धीरे-धीरे वह वाणी अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी। वे अत्यंत धीर गंभीर कदमों से आनंद, रोमांच, श्रद्धा से भरे उस स्थान की ओर गये। वहाँ देखा, एक पुण्य मूर्ति वृक्षों की घनी छाया में आसन लगाये कुबड़ी पर हाथ टेके बैठी है। पास में कमंडल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वे भक्तिपूर्ण हृदय से भरे उसकी ओर देखते रह गये।

शरीर कहानी बिलकुल दिव्य—ऐसा जान पड़ता था कि सम्पूर्ण शरीर के आसपास एक प्रकार का तेज-मंडल प्रदीप्त हो रहा है और इस तेज-मंडल की अपेक्षा भी विशेष उद्दीप्त दिखाई दे रहा है। स्पष्ट ही है कि जो अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से उनके बिलकुल समीप जाना चाहें, उन्हीं की इस उग्र प्रताप अथवा तेज से हानि न होगी, किन्तु जिनकी आत्मा शुद्ध, निष्कलंक नहीं है, उनको एक कदम आगे जाने का साहस न होगा। चारों प्रकार के योग से ज्ञान प्राप्त करके पूर्ण ब्रह्मज्ञान में लीन हो जाने वाले व्यक्ति की जो अवस्था होती है, वही अवस्था पूर्णरूप से उस पुण्य पुरुष को दिखाई देती थी। उन्होंने

जोर से यह कहकर कि 'राजा शाहजी का पुत्र शिवाजी आपको दंडवत करता है, इस पर कृपादृष्टि रखें'—अपना शरीर एक दम दंड की तरह पृथ्वी पर डाल दिया। इधर यह हाल था, उधर स्वामीजी ने मानो अंतर्ध्यान से सब जान लिया था, क्योंकि उनके मुख पर स्मित छाया थी। शिवाजी जमीन पर सिर टेके निमग्न थे कि उनके कान में ऐसा जान पड़ा कि कोई मन्द स्वर में कह रहा है कि गौ-ब्राह्मणों की रक्षा में, उनके संरक्षण की तत्परता में ध्यान रक्खो। स्वराज्य-संस्थापन—बस यही तुम्हारा कर्तव्य है। इसीलिये तुम्हारा अवतार हुआ है। तुम्हारा पुरश्चरण, जप, तप, सेवा सब यही है और यही तुम्हारी गुरु सेवा है। जितनी शीघ्रता करोगे, उतनी ही सफलता मिलेगी। हम सिर्फ निमित्त मात्र हैं। सारा कार्य तुम्हारे ही हाथ में है। प्रथम सिद्धि होते ही मिलूँगा। ज्योंही शिवाजी ने सिर उठाकर देखा तो समर्थ स्वामी अंतर्धान हो चुके थे। स्वामीजी की आज्ञानुसार कार्य करने का दृढ़ निश्चय कर वे वहाँ से लौटे। यहाँ श्रीधर स्वामी शिवा के विषय में चिन्तित हो रहे थे। राजा साहब ने आकर उनसे स्वप्न का तथा प्रातः काल के साक्षात्कार का विवरण कह सुनाया। फिर वे अपने स्थान को वापिस आये।

नाना साहब तथा तानाजी शिवा जी के विषय में चिन्तित हो रहे थे। राजा साहब की अनुपस्थिति में सुल्तानपुर जाकर वहाँ का हाल-चाल देखने चल दिये। रास्ते में एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को ठहरने का उनका इरादा हुआ। वे वहीं पर थे कि सूर्याजी की विक्षिप्त स्त्री के कभी गाने, कभी रोने, कभी हँसने का स्वर सुनाई पड़ा। जहाँ से आवाज आ रही थी, वे उसी ओर गये। देखा, झोंपड़ी में से आवाज आ रही थी। दरवाजा खटाखटाने पर एक वृद्ध ने दरवाजा खोला। वह नाना साहब

को पहिचान गया, परन्तु नाना साहब न पहिचान सके। इतने में एक घुड़सवार आया और उसने वृद्ध महाशय को एकान्त में बुलाया। नाना साहब ने उस व्यक्ति को पहिचान लिया, फिर वृद्ध को भी जान लिया कि वे सूर्याजी के श्वसुर शंभा घोरपड़े हैं। सूर्याजी ने नानाजी को यवनों द्वारा गृह के लूटे जाने, अपने घायल हो जाने, अग्निकांड तथा स्त्री की विक्षिप्त अवस्था का हाल कह सुनाया। नानाजी ने सिर्फ इतना बतलाया कि वे शिवाजी के दल में शामिल हो चुके हैं और उनका सुलतानपुर का किला हस्तगत करने का इरादा है। सूर्याजी ने इतना बतलाया कि आजकल मुगलों को लूटना ही उनका एकमात्र ध्येय है। श्यामा की कार्य-दक्षता की भी उन्होंने नानाजी से काफी प्रसंशा की तथा यह कहा कि यदि श्यामा न पहुँचा होता, और वह इतना कार्य-पटु, तीक्ष्ण बुद्धि वाला, साहसी बालक न होता, तो सूर्याजी स्त्री-बच्चे सहित अग्नि में स्वाहा हो गये होते।

सूर्याजी ने कहा कि किसी से गुप्त रूप में किले का समाचार मँगाया जावे। इतने में श्यामा आ पहुँचा। अब वह बहुत सँभल गया था। वह बहुत ही खुशदिल और आनन्दी स्वभाव का जिम्मेदारी समझने वाला था। अतः उसे ही भेजने का निश्चय किया। वाचालता के लिये वह प्रसिद्ध ही था। चतुराई उसमें कूट-कूट कर भरी थी। वह गाँव के निकट के कुएं पर बैठा खा रहा था कि चन्द्राबाई दासी सहित वहाँ आ पहुँची। उसने उसकी माँ के पास जाने का इरादा बतलाया। किले में जाना सरल तथा शंकारहित न था। नाना साहब के पास वह जाना चाहता था कि उस स्त्री ने रोक लिया। चन्द्रा को पुरुष वेश त्यागना पड़ा, अन्यथा पहिचाने जाने का भय था। समय की प्रतिकूलता के

कारण उन्हें दासी का पुराना लुगड़ा पहिनना पड़ा। परन्तु उस सीधी सरल साध्वी को लेश-मात्र भी खेद न हुआ। परन्तु दासी स्वामिनी की दशा देख व्याकुल थी। नानाजी के तिरस्कार करने के बाद जीवन से निराश हो गई थी। परन्तु आज्ञाकारिणी दासी के कारण ही वह अब तक जीवित थी। श्यामा उन्हें वहाँ छोड़ पुनः सुलतानगढ़ की ओर चला। रास्ते में एक खाँ साहब मिले उसने श्यामा से नानाजी के विषय में पूछा। श्यामा ने कहा कि वह जानता है। फिर उसने स्त्री तथा एक पुरुष के विषय में पूछा। उसने फिर भी 'हाँ' कहा तथा यह भी कहा कि नानाजी को तथा उन स्त्री पुरुष को लुटेरों ने कैद कर रक्खा है। वह खाँसाहब को दाऊद मियाँ के यहाँ ठहराने ले गया। ये दाऊद मियाँ सूर्याजी के ही छद्म वेशी साथी थे। वहाँ बेगम साहिबा से मिलने की लालसा में उन्हें भी यह वेश लाचार होकर धारण करना पड़ा तथा श्यामा उन्हें बड़ी शान से जनानखाने की ओर ले चला। रास्ते के पहरेदारों से बचकर जब वे अन्दर पहुंचे तो वहाँ सूर्याजी की छावनी थी। खाँ साहब के दिमाग में भर गया था कि नाना साहब तथा फातिमा दोनों यहाँ कैद हैं, अतएव ये रोज मिलते होंगे। इस कारण उन्हें फातिमा को देखने की आतुरता थी। श्यामा उन्हें एक वृक्ष के नीचे खड़ा कर, दौड़कर छावनी में गया तथा सबसे कह आया। फिर खाँ साहब को लेकर अन्दर गया। सब उसे टोकते तो वह एक कहता बीबी हैं। बिलकुल बाबाजी के पास जा पहुँचा तथा मियाजी का मुँह खोलने लगा। बाबाजी ने इतनी जोर से धक्का दिया कि वह एक ओर जाकर लोटने लगा अब बीबी जी का राज खुल गया था। उन्हें बाँधकर सूर्याजी के पास ले जाया गया। सब हँस रहे थे। हँसी सुनकर नाना साहब वहाँ आये। वे अहमद मियाँ को पहिचान गये तथा "ऐ मेरी जान अहमद बीबी" कह कर पुकारने लगे। तथा उसे उसी पोशाक में

रखने का आदेश दिया।

अहमद अत्यंत लज्जित तथा दुखी था। वह मना रहा था कि फातिमा उसे न देखने पावे, तो अत्युत्तम होगा। परन्तु संयोग से या अहमद के दुर्भाग्य से रणदूलहखां की बहिन दासी फातिमा के साथ सुलतानगढ़ जा रही थी। सूर्याजी के आदमियों ने उन्हें रोका, परन्तु नानाजी के कारण उन पर कोई प्रतिबंध न था। अहमद का स्त्री वेश नानाजी ने उन्हें दिखला दिया तथा किले की तरफ उन्हें रवाना किया। वे भी किले की तरफ जाकर पर्याप्त समाचार प्राप्त कर लाये तथा सूर्याजी से मिलकर शिवाजी के पास गये।

अप्पा साहब को प्रथम जो अधिकार मिला था, वह रद्द हो गया। इससे उसे बड़ा खेद हुआ तथा स्वामिभक्ति का ऐसा उचित पुरस्कार पाकर उसका चित्त खिन्न हो गया था। वे काशी जाने का विचार करने लगे। रणदूलहखां ने अप्पा साहब के पहिले ही मेहरजान को भेज दिया था। रणदूलहखां के प्रयत्न से अप्पा साहब को स्थायी हुकुम मिल गया तथा वे किले को वापिस लौटे।

अप्पा साहब का आजाना एक प्रकार से लाभदायक ही हुआ। सूर्याजी चतुर राजनीतिज्ञ था। सूर्याजी उस झोपड़ी वाले वृद्ध की सहायता से ही कार्य करता था। उसने किले के कुछ मनुष्यों से यह कहा कि अप्पा साहब की सम्मति इसमें है। अप्पा साहब का कार्यक्रम पूर्ववत चलने लगा था।

चार पाँच दिन बाद एक घुड़सवार वहाँ आ पहुँचा। वह, जहाँ श्यामा की मां तथा चन्द्राबाई रहती थी, वहां आकर ठहरा, दासी ने उसे ठहराया तथा उत्तम प्रबन्ध कर सवार को सहूलियत पहुँचाई। वह जान गया कि यह दुर्दैव की मारी है। चन्द्राबाई को देख समझ गया कि समयचक्र के फेर से ही यहाँ

रह रही है। उसने कारण पूछा। दासी ने अस्पष्ट रूप से इतना कहा कि उनकी स्वामिनी को उसके मालिक ने छोड़ दिया है, अतएव वह यहां रह रही है। युवक ने कहा कि मुझे भाईस्वरूप समझो, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। दिन को उसने सुलतानगढ़ के आस पास का निरीक्षण किया तथा अर्धरात्रि को फिर से किले का निरीक्षण अच्छे ढंग से किया। फिर अपने विश्राम स्थान पर आकर लेट गया। प्रातःकाल उसने निशानी के रूप में एक थैली दी तथा सुलतानगढ़ के किले में जाकर भवानी माता के दर्शन की इच्छा प्रगट की। श्यामा ने उनसे कमली धारण करने को कहा ताकि वह अपना रिश्तेदार बतला सके। इस प्रकार श्यामा उन्हें अपना मामा बनाकर पूरा सुलतानगढ़ का किला दिखला लाया। किले का एक कोना भी न छूटा। श्यामा उन्हें पहिचान गया। वे राजा शिवाजी थे।

शिवाजी प्रतिज्ञा के कारण माता के पास न जाते थे। परन्तु एक दिन उनकी माता उन्हें खोजती आई तथा आग्रह पूर्वक मनाकर ले गई। उन्हें भी माता के आने पर प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी। यहाँ नाना जी उतावली मचा रहे थे, वहाँ कोणदेव दादा जी उनको यदा कदा बातें सुनाया करते थे।

अतएव मस्त तथा खिन्न हो वे भवानी माता के मंदिर में ध्यान मग्न हुये। वहाँ उनको आंतरिक प्रेरणा मिली। वे प्रफुल्लित हो बाहर आये। समस्त सैनिकों को जमाकर उन्होंने शस्त्र भंडार में से एक एक तलवार निकालकर बाँटी। उसके बाद उन्होंने इनको दो पार्तों में बाँटा। एक की अध्यक्षता नाना जी ने तथा दूसरो की ताना जी ने स्वीकार की। यह निश्चित हुआ कि दोनों दलपति सुलतानगढ़ के दो पार्श्वों में जाकर छिप कर बैठे रहें और हुक्म की प्रतिज्ञा करें। सूर्याजी के आदमी भी मौका पड़ने पर तैयार रहें। इस प्रकार की

व्यवस्था हो जाने पर सब सिपाही विदा हुये।

शिवाजी वेश बदल कर पुनः उन्हीं स्त्रियों के यहाँ जा पहुँचे तथा श्यामा के साथ सुलतानगढ़ के नीचे वाली बस्ती में लोगों से हिल मिल आये। यहाँ तक कि उधर सिपाहियों से हिल मिल कर बातें करने लगे।

यहाँ रणदूलहखाँ का महत्व सैयदुल्लाखाँ बादशाह की निगाहों से न गिरा सका, अतएव कर्नाटक के उपद्रव को दमन करने के लिये उसने बादशाह को रणदूलहखाँ को भेजने को बाध्य किया। उसका विचार था कि उसके सूने में उसकी वहन मेहरजान को उड़ाकर बादशाह के हरम में डाला जावे तथा रंगराव अप्पा को तंग किया जावे। रणदूलहखाँ ने पचास सैनिकों का बन्दोवस्त करके मेहरजान की सुरक्षा के लिये भेज दिये। रणदूलखाँ के जाने पर उसने सौ चुने सिपाहियों को सुलतानगढ़ भेजा था। दक्षिण में छावनी डालने का आदेशा दिया। सैयदुल्लाखाँ के आने के पहले ही अप्पा साहब ने सब प्रबन्ध ठीक कर लिया। सैयदुल्लाखाँ ने आते ही राज प्रबन्ध एक प्रकार से हाथ में ले लिया। अप्पा साहब को डाँटा तथा किले को सुसज्जित किया। सैयदुल्लाखाँ का आन्तरिक उद्देश्य दूसरा ही था। रणदूलहखाँ के पचास सैनिकों को उसने वापिस करना चाहा, परन्तु अप्पा साहब ने कह दिया कि यह उनके वश की बात नहीं है। वे कृष्णकृत्यः सैनिक उनके लिये वाधक थे सैयदुल्लाखाँ ने उसके नायक को बुलाकर डाटा इस पर उसने तलवार खींच ली। वह घबड़ा कर नरम पड़ गया। वह धूर्त था, परन्तु बहादुर न था। सैयदुल्लाखाँ सबसे ऊपर की कोठे पर बेगम साहिब की छत की बराबरी पर बैठा था। शराब की मात्रा अधिक थी। वह स्वप्नों के महल बना रहा था कि वह काला मनुष्य उसके सामने आकर उसे चेतावनी देकर चला गया। उसे देखते ही उसकी

डर के मारे खराब हालत हो गई थी। पन्द्रह मिनिट के अन्दर ही वह गुप्त हो गया। खोजने पर भी न मिला। चारों ओर से सुरक्षित पहरा लगवाकर भी खां साहब निश्चित न थे। प्रातः काल उनका सेनाध्यक्ष आया। उससे सलाह करके अप्पा साहब तथा रणदूलहखां के सिपाहियों को शराब की नशीली वस्तु पिलाकर उन्हें बेहोश किया जावे तथा कार्य को पूर्ण किया जावे। लगभग सात बजे शाम को सैयदुल्लाखां का दुश्मन उन्हीं स्त्रियों की झोपड़ी के पास आ श्यामा के मामा से मिला। उसने बतलाया कि जिस कार्य को आप करना चाहते हैं, उसका उचित अवसर आ गया है। वह पापी सैयदुल्लाखां नीचतापूर्ण कार्य करने वाला है। वह रणदूलहखां की बहिन का हरण करके ले जाने वाला है। बादशाह को खुश करने का वह प्रयत्न कर रहा है तथा आज की रात्रि को वह सिपाहियों को शराब द्वारा बेहोश कर कार्य करेगा। अतएव आप किले को भी हस्तगत करियेगा तथा एक सती साध्वी की प्रतिष्ठा भी बचाइये। आप सूर्याजी से कहिये कि सैयदुल्लाखां के सौ सिपाहियों के साथ-साथ उसके आदमी भी चढ़ आवें। समय ठीक बारह बजे रात्रि का निश्चित हुआ है। इतना वह कह चला गया।

शिवाजी ने कुल देवी का ध्यान किया। देवी का साक्षात्कार हुआ, तथा उत्तर मिला कि ये उन्हीं की प्रदान की हुई सुविधायें हैं। देवी जी की आज्ञा हो चुकी थी। अतएव शिवाजी ने सूर्याजी के आदमियों को तथा अपने सिपाहियों को रात्रि के ठीक बारह बजे सामने के द्वार से आने की आज्ञा दी। तानाजी को आश्चर्य हुआ, परन्तु उन्हें मित्र की अभूतपूर्व कार्य दक्षता पर विश्वास था। इस प्रकार का प्रबन्ध कर उन्होंने सोचा कि किलेदार को मिलाया जावे। अतएव तानाजी की इच्छा के

विरुद्ध भी शिवाजी के कथन पर पिता से मिलने जाना पड़ा। उद्देश्य किलेदार को कैद न करने का था तथा लड़ाई में उन पर हथियार न चलाये जावें। प्रत्येक पहरे को लाँघते नानाजी के पास अप्पाजी पहुँचे। अपना सच्चा नाम बतला कर वे पिता के पास पहुँच पाये। खां साहब को पता चल गया। रणदूलहखां के आदमियों को वे शराब पिला कर बेहोश न कर सके। अतएव अब उसे अपने सिपाहियों पर ही विश्वास था कि वे जो कुछ करेंगे, वही होगा।

जब वे अप्पा साहब के पास पहुँचे अप्पा साहब उन पर उबल पड़े कि उसी के कारण उन्हें कष्ट भोगना पड़ रहा है। नानाजी ने कहा कि आपकी अपनी स्वामिभक्ति का जो पुरस्कार मिला है, वह तो आपने प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है। अब और क्या बकाया रह गया है? अप्पा साहब नाना साहब को मारने दौड़ ही रहे थे, कि सैयदुल्लाखां तथा चार पाँच आदमी जान बचाने वहाँ आये। उनको देख अप्पा साहब बोल उठे, खां साहब इस नमकहराम नाना को कैद कर लो; परन्तु बाहर इतना कोलहल मचा कि अप्पा साहब को बाहर आना पड़ा।

जब नाना साहब ऊपर आये, उस समय सैयदुल्लाखां ने अपने सिपाही उनके पीछे भेजे और वह जब स्वयं आ रहा था, तो उस काले मनुष्य ने उसे धक्का देकर गिरा दिया तथा उसकी छाती पर पैर रख उसके प्राण लेने को कह चला गया तथा चार घड़ी का समय सैयदुल्लाखां को प्रायश्चित करने और नमाज पढ़ने को दे गया।

खां साहब अप्पा साहब के कमरे से बाहर आये। उन्होंने बहुत से आदमियों को आता देख समझा, हमारे सैनिक आ रहे हैं। उसने जैसे ही श्यामा का नाम ले पुकारा, श्यामा समक्ष

आ गया। मशालें जलते ही वह समझ गया कि यह भी उसी शैतान की सेना है।

वे सैयदुल्लाखाँ को पकड़ना चाहते थे कि वह अप्पा साहब के कमरे में घुस गया। सम्पूर्ण परिस्थिति विलक्षण दिखाई दे रही थी। अप्पा साहब जब बाहर आये, तो देखा, मामला बेढब है। अप्पा साहब से हट जाने को कह उन्होंने सैयदुल्लाखाँ से आत्मसमर्पण करने को कहा। अप्पा साहब ने सिपाहियों को पुकारा, परन्तु वे निश्शक्त । सैयदुल्लाखाँ अप्पा साहब से आत्मरक्षा की प्रार्थना कर रहा था। अप्पा साहब ने उसकी रक्षा का वचन दिया। वे उसे पकड़ने बाहर निकल पड़े। अप्पा साहब के कारण सेना ने सैयदुल्लाखाँ को निकल जाने दिया। इतने में सैयदुल्लाखाँ के कुछ सिपाही बेगमों के महल पर धावा मार रहे हैं। तानाजी के सिपाही वहाँ पहुँचे, युद्ध हो ही रहा था कि अप्पा साहब आ पहुँचे तथा लड़ने लगे। नाना एक तरफ हट ही रहे थे कि पिता पर वार करने का अवसर न आवे कि किसी ने उन्हें तलवार से घयाल कर दिया। कि किसी ने उसे (अहमद) को भुजाली मारी तथा नाना साहब को सुरक्षित स्थान पर ले जाने को आदमी जा रहा था कि वहाँ चन्द्रा सौभाग्यवश आ गई। वह पानी लाकर नाना साहब को होश में लाई तथा उन्हें पानी पिलाया। थोड़ी देर बाद दो आदमी आये। वे नाना साहब को उठा कर महल में ले गये। शिवाजी ने जीवा को अहमद के पास बैठने तथा पानी इत्यादि पिलाने का आदेश दिया। वे मरणासन्न मानव को यथा सम्भव सुख पहुँचाना धर्म समझते थे, चाहे वह दुश्मन ही क्यों न हो। किला पूर्णरूपेण हस्तगत हो गया था, बेगम के सिपाहियों ने हथियार डाल दिये थे। अप्पा साहब सैयदुल्लाखाँ को किले के बाहर पहुँचा आया। वह शीघ्रता से उस ओर

बढ़ा ,जहाँ उसके सिपाही थे, परन्तु रास्ते में उसका शत्रु बैठा था। सैयदुल्लाखाँ से पीछे वह कट्टर दुश्मन भूत सा लगा था। वहाँ देखा, लड़ाई हो रही है। काले मनुष्य ने सैयदुल्लाखाँ को ललकारा, परन्तु वह कायर धर्मयुद्ध के लिये तत्पर न हुआ, तो वह उसे धिक्कारता चला गया। कायरों पर हाथ उठाना वह तुच्छ समझता था। उसी समय सूर्याजी के सिपाही उसे पकड़ कर सूर्याजी के पास ले गये। सूर्याजी उसे मारना चाहते थे कि रामदेव का काला आदमी आ पहुँचा तथा उसे लड़ने को ललकारने लगा; परन्तु वह तैयार न हुआ। अतएव उसके शरीर से रक्त निकाल साले-बहनोई सूर्याजी और रामदेव ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की तथा सैयदुल्लाखाँ को फाँसी दे दी।

रामदेव की स्त्री को सैयदुल्लाखाँ बेईमानी से बादशाह के हरम में ले गया था। रम्भावती से रामदेव साईं के रूप में मिलते ही रहते थे। वे रम्भावती के पास गये तथा उसे निश्चित स्थान पर बुलाया। वे उसे मारना चाहते थे, परन्तु हाथ न उठा। रम्भावती बढ़ गई। उसने कहा कि वह व्यर्थ चेष्टा न करे। वह विष-पान कर लेगी तथा विष, वह जो साथ लाई थी, पी गई। रामदेव भी वहीं आत्महत्या करके मर गया। नाना साहब अच्छे हो गये थे, परन्तु वे चन्द्रा की सूरत न देखना चाहते थे। रणदूलहखाँ की बहिन मेहरजान ने चन्द्रा की निर्दोषता का प्रमाण दिया। मेहर तथा नानाजी बाल्यावस्था के साथी थे। मेहर नाना को स्नेह की दृष्टि से देखती थी। मेहर ने रण-दूलहखाँ के वापिस न आने तक वहीं रहने का निश्चय किया। मेहर ने नाना से कहा कि नाना, तुम व्यर्थ ही सन्देह के कारण अपनी बीमारी बढ़ा रहे सो। वह बिल्कुल पवित्र है। नानासाहब मान गये। बोले, तुम्हारा वचन हमारे लिये प्रमाण है।

सुलतानगढ़ हस्त करके शिवाजी शांत न हुये। उनमें मह-

त्वाकांक्षा थी। वे गुरु समर्थ के लिये ठहरे थे कि कब आते हैं। किले को जीतने में जिन लोगों ने सहायता की थी, उन्हें यथोचित पुरस्कार दिया गया। नाना साहब को उनके पिता का कार्य देना निश्चित हुआ। सर्फोजी को दंडित किया गया।

समर्थ स्वामी के आने पर शिवाजी ने गुरु-दक्षिणा स्वरूप वह किला उन्हें दे दिया। तथा उस पर भगवा झंडा फहराने को उन्होंने कहा। जब स्वामी आ रहे थे, उस समय सूर्याजी की स्त्री पागल की तरह वहाँ गई। परन्तु स्वामी समर्थ ने एक बार उसकी ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देख कहा, जा सुख से रह वह अच्छी हो गई। स्वामी की कीर्ति फैल रही थी। सब लोगों ने यथेष्ट दर्शन सुख और बन्दन सुख किया। नानाजी से कहा कि चन्द्रा साध्वी सती है।

संध्याकाल शिवाजी ने सभी साथियों के समक्ष गुरु के चरण कमलों में किला अर्पण कर आशीर्वाद माँगा। भगवे रंग की दफनी किले पर फहराने लगी।

---

*

*

आनन्दमठ

कथामुख

बड़ी दूर तक फैला हुआ घना जंगल है। तरह-तरह के पेड़ मौजूद होने पर भी अधिकतर शाल के ही वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। उन पेड़ों के सिर और शाखा-पत्र एक दूसरे से ऐसे मिले हुए हैं, और बहुत दूर तक वृक्षों की ऐसी घनी श्रेणी बन गई है कि उनके बीच में तनिक भी छिद्र या फांक नहीं मालूम पड़ती; यहाँ तक कि प्रकाश आने का भी कहीं से रास्ता नहीं रह गया है। इस प्रकार वृक्ष के पल्लवों का अनन्त समुद्र हवा की तरङ्गों पर नाचता हुआ, कोसों तक फैला हुआ दिखाई पड़ता है। नीचे घोर अन्धकार है। दोपहर में भी सूर्य की रोशनी साफ़ नहीं मालूम पड़ती। वहाँ का दृश्य बड़ा ही भयानक मालूम पड़ता है; इसी से उसके भीतर कभी कोई आदमी नहीं जाता। पत्तों की लगातार खड़खड़ाहट और जंगली जानवरों तथा चिड़ियों की बोली के सिवाय और कोई शब्द वहाँ नहीं सुनाई पड़ता।

एक तो इस लम्बे-चौड़े और घने जंगल में आप ही सदा अन्धकार छाया रहता है; दूसरे रात का समय, फिर क्या पूछना है? दो पहर रात बीत गयी है—बड़ी अँधेरी रात है। जंगल तो जंगल बाहर भी खूब अन्धेरा है, हाथ को हाथ नहीं सूझता। बनके भीतर तो ऐसा अन्धेरा हो रहा, जैसा भूगर्भ में होता है।

सारे पशु-पक्षी चुप हैं। न जाने कितने, लाखों करोड़ों पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग इस जंगल में बसेरा करते हैं, पर इस समय

किसी की बोली नहीं सुनाई पड़ती। उस अन्धकार का अनुमान भले ही हो जाय, पर शब्दमयी पृथ्वी की इस निस्तब्धता का तो अनुमान ही नहीं हो सकता। उसी अनन्त शून्य अरण्य में, उसी सूचीभेद्य अन्धकारमयी रात्रि में उस प्रगाढ़ निस्तब्धता को भंग करते हुए न जाने किसने कहा—"मेरी मनोकामना पूरी न होगी?"

इस आवाज के बाद ही वह अरण्य मानों फिर निस्तब्धता के समुद्र में डूब गया। अब भला कौन कह सकता है कि इस जंगल में अभी मनुष्य की बोली सुनाई पड़ी थी? थोड़ी ही देर बाद फिर वैसा ही शब्द सुनाई पड़ा—फिर भी किसी मनुष्य-कण्ठ ने उस निस्तब्धता के समुद्र को मथते हुये कहा—"क्या मेरी मनो-कामना पूरी न होगी?"

इस प्रकार तीन बार उस निस्तब्ध समुद्र में खलबली पैदा हुई। तब किसी ने मानो पूछा—"अच्छा बोलो, दाव पर क्या रखते हो?"

प्रत्युत्तर मिला—"मैं अपना जीवन सर्वस्व दाव पर लगाता हूँ।"

प्रतिशब्द हुआ—"जीवन तुच्छ पदार्थ है, उसे तो सभी लोग त्याग करते हैं।"

"तब और मेरे पास है ही क्या, जो दे सकूँ?"

उत्तर मिला—"भक्ति!"

---

*

*

आनन्दमठ

(१)

संवत् १७७६ की ग्रीष्म ऋतु का समय है, कड़ाके की धूप पड़ रही है। बंगाल के पदचिन्ह नामक गाँव में घर तो बहुत हैं, पर आदमी कहीं नहीं दिखाई पड़ते। बाजार में कतार-की कतार दुकानें हैं, हाट में छपरियों का तांतासा लगा हुआ है, हर टोले-मुहल्ले में सैकड़ों मिट्टी के बने मकान नज़र आते हैं, बीच बीच में छोटी बड़ी अटारियाँ भी दिखाई देती हैं, पर आज सब जगह सन्नाटा छाया हुआ है। बाजार की दुकानें बन्द हैं, दूकानदार किधर भाग गये हैं, पता नहीं। आज हाट का दिन है, तो भी हाट नहीं लगी। आज 'सदावर्त' का दिन है, पर भिखमंगे भिक्षा लेने के लिये घर से बाहर निकले ही नहीं। जुलाहों ने आज कपड़ा बुनना छोड़ दिया है और घर के एक कोने में बैठे हुये रो रहे हैं। व्यापारी अपना रोजगार छोड़ बच्चे को गोद में लिये हुये आँसू बहा रहे हैं। दाताओं ने दान देना बन्द कर रखा है। पंडितों ने पाठशाला बन्द करदी है। शायद दूध-पीते बच्चे भी खुलकर रोने का साहस नहीं करते। राजपथ पर आदमी चलते-फिरते नहीं नज़र आते, सरोवरों पर कोई स्नान करने वाला नहीं दिखलाई देता, घर के दरवाजों पर कोई आदमी बैठा नहीं दीखता, पेड़ों पर पंछी न रहे चरागाहों में गौएँ चरती कहीं दीखती। हाँ स्मशान में स्यारों और कुत्तों की पलटन तैयार हैं।

संवत् १७७४ में फसल अच्छी नहीं हुई, इसलिये १७७५ में

चावल की फसल बड़ी महँगी रही, प्रजा घोर विपद में रही, लेकिन राजा ने अपनी मालगुजारी पाई-पाई वसूल कर ली। मालगुजारी बेबाककर बेचारी दरिद्र प्रजाने एक ही वक्त खाकर दिन विताये। १७७५ में अच्छी बरसात हुई। लोगों ने सोचा कि चलो, इस साल तो दैव की कृपा हो गई। आनन्द से फूलकर ग्वाले खेतों में गीत गाते हुये दिखाई देने लगे, गृहस्थों की स्त्रियाँ अपने स्वामी से चाँदी के गहने गढ़ा देने के लिये मचलने और हठ करने लगीं। यकायक आश्विन के महीने में विधाता वाम हो गये। आश्विन और कार्तिक में एक बूँद भी जल न पड़ने से खेतों में धान सूख कर खाक हो गई। किसी-किसी के एक दो बीघों में धान नहीं सूखने पाये थे, पर वे सब राजा के नौकरों ने सैनिकों के खर्च के लिये खरीद लिये। अब तो लोगों को अन्न मुहाल हो गया। पहले तो लोगों ने कुछ दिनों तक एक ही बेला भोजन किया, फिर एक ही बेला आधा पेट खाकर विताया, इसके बाद दोनों बेला उपवास करने लगे। चैत में थोड़ी बहुत रबी पैदा हुई सही, पर वह भी सबके खाने भरको न हुई। इतने पर भी सरकारी तहसीलदार ने इसी मौके को अपनी खैरख्वाही दिखलाने के लिये अच्छा समझा और एक बारगी दस रुपया सैकड़ा लगान बढ़ा दिया। सारे बंगाल में घोर हाहाकार मच गया।

पहले तो लोगों ने भीख माँगनी शुरू की, पर भीख मिलनी भी मुश्किल हो गयी। कौन किसे भीख देता? सब लगे उपवास करने। धीरे-धीरे लोग बीमार पड़ने लगे। लोगों ने गाय-गोरू बेच दिये, हल-बैल बेच दिये, बीज के अन्न खा डाले, घर द्वार बेच डाला, जगह-जमीन भी बेच दी। इसके बाद लड़की बेचना शुरू किया। फिर लड़के बिकने लगे। अन्त में स्त्री बेचने की भी नौबत आ पहुँची, पर लड़का-लड़की और स्त्री भी कोई कहाँ तक खरीदे! खरीददारों का ही टोटा हो गया। सब बेचने को ही

तैयार नजर आने लगे। उससे हटे, तो घास खाने लगे। जंगली पेड़-पौधों पर दिन काटने लगे। नीच और जंगली लोग तो कुत्तों बिल्लियों और चूहों को मार कर खाने लगे। बहुत से आदमी देश छोड़कर भाग गये, पर वे विदेश में ही अन्न के अभाव से मर गये। जो नहीं भागे, उनमें से कितने अखाद्य भोजन से भूख मिटाने के कारण रोगी होकर प्राण त्याग करने लगे।

मौका पाकर रोगों ने जोर पकड़ा। ज्वर, हैज़ा, क्षय और चेचक का प्रकोप बढ़ गया। खासकर चेचक का तो बहुत ही जोर हुआ, घर-घर में चेचक से मौत होने लगी। कौन किसे जल देता है? कौन किसे छूने जाता है? न कोई किसी की चिकित्सा करता है, न किसी को देखने जाता है। मरने पर कोई लाश उठाने वाला नहीं मिलता। लाशें घर में पड़ी-पड़ी सड़ने लगीं। जिस घर में चेचक प्रवेश करती, उस घर के लोग डरके मारे रोगी को छोड़कर भाग जाते।

इस ग्राम में महेन्द्रसिंह बड़े धनी थे। पर आज धनी निर्धन सब एक ही भाव हो रहे हैं। इसी दुःख की घड़ी में व्याधि-ग्रस्त हो, उनके सभी आत्मीय स्वजन और दास-दासी उन्हें छोड़कर चल दिये। कोई मर गया, कोई भाग गया। और उनके बहुत बड़े परिवार में केवल उनकी स्त्री कल्याणी, एक छोटी कन्या और स्वयं वे रह गये।

एक दिन पति-पत्नी ने तय किया कि मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार या कलकत्ते जाने से प्राणरक्षा हो सकती है और यह स्थान अवश्य छोड़ देना चाहिए। दूसरे ही दिन सबेरे दोनों स्त्री पुरुष थोड़ा सा द्रव्य अपने साथ ले घर ताला लगा, गाय-गोरू को खुला ही छोड़, कन्या को गोद में ले राजधानी की ओर चल पड़े। महेन्द्र ने बचाव के लिए बन्दूक और गोला बारूद रखली, कल्याणी ने एक ज़हर की डबिया यह सोच कर अपने

कपड़े के अन्दर छिपा ली कि विपत्ति के दिन हैं, न जाने कब क्या हो। जेठ का महीना था। कड़ाके की धूप से पृथ्वी आग से भरी भट्टी की तरह दहक रही थी। दोपहर की लूह आग की लपटों को मात करती थी। आसमान तपे हुए तांबे की चद्दर की तरह तप रहा था। रास्ते की धूल आग की चिनगारी बन रही थी। उसी भीषण आग की लूह में चलते हुये वे साँझ होते-होते एक चट्टी में आ पहुँचे। महेन्द्र मन-ही-मन बड़ी आशा किये हुये थे कि चिट्टी में पहुँचने पर स्त्री-कन्या के मुँह में ठण्डा पानी और प्राण-रक्षा के लिए चार दाने अन्न के पहुँचा सकेंगे। पर चट्टी में तो आदमी जन का कहीं पता ही नहीं है। बड़े-बड़े घर हैं, पर सब खाली पड़े हैं। आदमी सब भाग गये हैं। इधर-उधर देखभाल कर महेन्द्र ने स्त्री-कन्या को एक घर में सुला दिया और बाहर आकर जोर-जोर से आवाजें देने लगे। पर किसी ने उत्तर नहीं दिया।

महेन्द्र ने कल्याणी के कहा—"तुम जरा साहस करके थोड़ी देर अकेली बैठी रहो, मैं जरा देखूँ, कहीं भगवान की दया से गाय मिल जाय, तो थोड़ा दूध दुह लाऊँ।" यह कह कर महेन्द्र वहीं पर पड़ा हुआ, एक छोटा-सा मिट्टी का घड़ा लेकर बाहर निकले।

उधर महेन्द्र दूध की खोज में निकले, और इधर कुछ डाकू कल्याणी और उसकी कन्या को उठाकर जंगल में घुस गये। वन के बीच एक साफ-सुथरे और सुकोमल पुष्पों से भरे हुए भूमि-खंड में डाकुओं ने उन दोनों को ला रखा। उन्होंने कल्याणी के शरीर पर से गहने निकाल लिए और बटबारा करने में लग गये। बटबारे में मार-पीट की नौबत आ गई और डाकुओं को लड़ाई-झगड़े में फंसा देख कल्याणी सुयोग पाकर कन्या को गोद में ले जंगल में भाग गई। वन के निविड़ अंधकार में गिरती पड़ती वह एक बड़े से पेड़ से नीचे बैठ गई और आँखें मूँद

कर भगवान को पुकारने लगी। धीरे-धीरे अंतरिक्ष से गान उठा।

"हरे मुरारे, मधुकैटभारे" और क्रमशः और भी निकट, और भी स्पष्ट मालूम पड़ने लगा।

कल्याणी ने आँखें खोली। इसने क्षीण प्रकाश में देखा, कि शुभ्र-शरीर, शुभ्र-केश, शुभ्र-वसन ऋषि-मूर्ति उसके सामने खड़ी हैं। अन्यमनस्क कल्याणी ने श्रद्धा-भक्ति युक्त उन्हें प्रणाम करना चाहा, पर प्रणाम न कर सकी। सिर झुकाते ही बेहोश होकर गिर पड़ी।

जब उसे होश आया, तब उसने एक बड़े मठ के एक बड़े कमरे में बड़ी भारी जल रही धूनी के पास अपने को पाया। सामने वही महापुरुष खड़े थे। कल्याणी विस्मय से उनकी और देखने लगी, तब महापुरुष ने कहा, "बेटी शंका न करो। यह देवता का स्थान है। थोड़ा दूध है, सो पी लो, तब तुम्हें सब कथा सुनाऊंगा।"

कल्याणी ने बेटी को दूध पिला दिया, फिर रोते-रोते कहा—"आप देवता हैं, इसी से आप से कहती हूँ, मेरे स्वामी अभी तक भूखे होंगे। बिना उनको देखे या उनके बिना खा पी लेने का संवाद पाये, मैं भला कैसे दूध पी सकती हूँ।"

ब्रह्मचारी महापुरुष ने बातों-बातों में समझ लिया कि यह महेन्द्र की स्त्री है। उन्होंने कहा—"मेरी बात मानो, दूध पी लो। मैं तुम्हारे स्वामी का समाचार लेने जाता हूँ। तुम दूध न पीओगी, तो मैं जाऊँगा ही नहीं।" "थोड़ा सा पानी मिलेगा ?" कल्याणी ने कहा।

ब्रह्मचारी ने जल के घड़े की ओर इशारा किया, कल्याणी ने हाथ फैलाया, ब्रह्मचारी ने पानी डाल दिया। जल से भरी हुई अंजलि ब्रह्मचारी के पैरों के पास ले जाकर कल्याणी ने

कहा—"आप इसमें अपनी पदरज दे दीजिये।" ब्रह्मचारी ने अपने पैर के अंगूठे से उस जल को स्पर्श कर दिया। बस, कल्याणी उसे पी गयी और बोली—"मैंने अमृत पान कर लिया, अब और खाने पीने को न कहिए। स्वामी का सम्वाद पाये बिना मुझसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया जायगा।"

ब्रह्मचारी ने कहा—"अच्छा तुम निर्भय होकर इस देव मन्दिर में बैठी रहो—मैं तुम्हारे स्वामी का पता लगाने जाता हूँ।"

रात बहुत बीत गई। ब्रह्मचारीजी चले जा रहे थे। ऊपर पहाड़ी, नीचे राजपथ, और बीच में जंगल था। जंगल के पेड़ों के नीचे अंधेरे में कोई दो-सौ हथियार बन्द आदमी जमा थे। धीरे-धीरे उनके पास पहुँच कर ब्रह्मचारी ने जाने किस बात का इशारा किया। पर न तो कोई बोला, न कोई हिला-डुला। फिर वे सब धीरे-धीरे उठकर चले जाने लगे। उनमें से एक को ब्रह्मचारी ने रोक लिया। वह आदमी नौजवान था। काली-काली दाढ़ी मूँछों से उसका चाँद सा चेहरा छिपा हुआ था। गेरुये वस्त्र पहिने था, और सारी देह में चन्दन लगाये हुये था। ब्रह्मचारी ने उससे कहा—"भवानन्द! क्या तुम महेन्द्रसिंह का कुछ पता-ठिकाना जानते हो?" यह सुन भवानन्द ने कहा—"महेन्द्रसिंह आज सवेरे स्त्री-कन्या के साथ घर छोड़कर जा रहे थे। रास्ते में एक चट्टी में—" यह सुनते ब्रह्मचारी बीच ही में बोल उठे—"चट्टी में जो हुआ, मुझे मालूम है, पर यह तो कहो, यह किसकी कार्रवाई थी?"

भवानन्द—"गाँव की नीच जातियों का काम है और क्या? इस समय सभी गाँवों की नीच जातियाँ पेट की मार से डाकू बन गयी हैं। आजकल कौन डाकू नहीं हो रहा है? आज हम लोगों ने ही लूटकर अन्न पाया है। कोतवाल साहब के लिए

दो मन चावल जा रहा था, हम लोगों ने उसे लूटकर वैष्णवों को खिला दिया।"

ब्रह्मचारी ने हँसकर कहा—"मैंने चोरों के हाथ से उसकी स्त्री-कन्या को तो बचा लिया है और इस समय उन्हें मठ में ही रख छोड़ा है। अब मैं तुम्हारे ऊपर इसका भार सौंपता हूँ कि महेन्द्र को ढूँढ़ निकालो और उसकी स्त्री व कन्या को उसके हवाले कर दो। यहाँ जीवानन्द ही रहें, तो यहाँ का सारा काम चलाया जा सकता है।"

भवानन्द ने स्वीकार कर लिया। ब्रह्मचारी दूसरी तरफ चले गये।

उधर जब महेन्द्र चट्टी से लौटकर आये, तो पत्नी व पुत्री को न पाकर बड़े व्याकुल हुए, उन्होंने सोचा कि शहर जाकर सरकारी कर्मचारियों की सहायता से पत्नी व पुत्री का पता लग जायगा और शहर की ओर चल दिए। रास्ते में उन्हें कुछ सिपाही जाते मिले। संवत् १७७६ में बंगाल में मालगुजारी वसूल करने का काम अँग्रेज कम्पनी के हाथ में आ चुका था।

इस बार जो कुछ वसूल हुआ था, वही बैलगाड़ी पर लाद कर सिपाहियों के पहरे में कलकत्ते कम्पनी के खजाने में जमा करने के लिए भेजा जा रहा था। आजकल डाकुओं का उपद्रव जोरों पर है, यही सोचकर पचास हथियारबन्द सिपाही खुली संगीनें लिए गाड़ी के आगे-पीछे चले जा रहे थे। उनका अफसर एक गोरा था। गोरा सबके पीछे घोड़े पर सवार था। धूप के मारे सिपाही दिन को रास्ता नहीं चलते, इसी लिए वे लोग रात को चले जा रहे थे। उन्हीं गाड़ियों और सिपाहियों को महेन्द्र ने देखा था। सिपाहियों और बैलगाड़ियों से रास्ता रुका देख, महेन्द्र हटकर बगल में खड़े हो गये। तो भी सिपाहियों ने एकाध धक्का दे ही दिया। यह सोच कर कि यह समय इनसे वाद-

विवाद करने का नहीं है, महेन्द्र रास्ते के उस ओर, जिधर जंगल था, जाकर खड़े हो गये।

सिपाहियों ने महेन्द्र के हाथ बंदूक देखकर उसे डाकू समझा, उसे पकड़ लिया और रस्से से उनके हाथ-पैर बाँधकर गाड़ी पर लाद दिया। महेन्द्र ने देखा, जोर आजमाइश करना बेकार है। वे हताश होकर पड़े रह गये और सरकारी खजाना आगे बढ़ गया।

ब्रह्मचारी की आज्ञा पा भवानन्द मृदु स्वर से हरि नाम ले उसी चट्टी की ओर चले, जिस पर महेन्द्र ने डेरा किया था। उन्होंने सोचा कि महेन्द्र का पता वहाँ जाने से लग सकता है। कुछ ही दूर जाकर उनका सिपाहियों से मुकाबला हो गया। उन्होंने भी महेन्द्र की तरह सिपाहियों को रास्ता दे दिया। एक तो सिपाहियों को सहज ही इसका अन्देशा था कि डाकू खजाने को लूटने की अवश्य चेष्टा करेंगे; दूसरे रास्ते में उन्होंने एक डाकू को गिरफ्तार भी कर लिया था, इसीसे भवानन्द को फिर इस रात के समय किनारा काट कर जाते देख उनको पूरा विश्वास हो गया कि यह भी कोई डाकू ही है। फिर क्या था! सिपाहियों ने उन्हें झट गिरफ्तार कर लिया और बाँध कर महेन्द्र के ही पास ला पटका। भवानन्द देखते ही पहिचान गया कि यही महेन्द्रसिंह है।

सिपाही लोग बेफिक्री के साथ शोर-गुल मचाते हुये जाने लगे। गाड़ियाँ चर्र-मर्र करती हुई चलने लगीं। तब भवानन्द ने ऐसे धीमे स्वर में, जिसे सिवाय महेन्द्र के कोई और न सुन सके, कहा—"महेन्द्रसिंह मैं तुम्हें पहचानता हूँ और तुम्हारी ही सहायता के लिए यहाँ आया हूँ। मैं कौन हूँ, यह तुम अभी सुन कर क्या करोगे? मैं जो कुछ कहूँ, उसे सावधानी में करो। तुम अपने बँधे हाथ का बन्धन गाड़ी के पहिये पर रखो।"

महेन्द्र बड़े अचम्भे में पड़े, पर बिना कुछ कहे भवानन्द के मुताबिक काम करने को तैयार हो गये। अँधेरे में खिसकते हुये वे गाड़ी के पहिये के पास गये और जिस रस्सी से उनके हाथ बँधे हुये थे उसे पहिये पर रख दिया। पहिये की रगड़ से रस्सी धीरे-धीरे कट गई। इस तरह उन्होंने पैरों का बन्धन भी काट डाला। इस प्रकार बन्धन से मुक्त होकर वे भवानन्द के परामर्श के अनुसार चुपचाप पड़े रहे। भवानन्द ने भी उसी प्रकार अपने हाथ-पैर के बन्धन काट डाले। दोनों चुप्पी साधे रहे।

जरा देर में किसी के पिस्तौल के फायर से एक सिपाही का सिर छिद गया और इसी समय, 'हरि-हरि-हरि' का शब्द कहते हुये दो-सौ हथियारबन्द जवानों ने वहाँ आकर सिपाहियों को घेर लिया। सिपाहियों का सेनापति मारा गया और सिपाही भाग खड़े हुये। तेजस्वी डाकुओं ने उनमें से कितनों को मार गिराया और कितनों को घायल कर डाला। इसके बाद गाड़ियों के पास आ, उनपर जो रुपये के बक्स लदे थे, उनपर अधिकार कर लिया।

तब वह व्यक्ति, जिसने पिस्तौल से फायर किया था और अन्त में जिसने इस युद्ध का नेतृत्व ग्रहण कर लिया था, भवानन्द के पास आकर उसके गले से लिपट गया। दोनों खूब गले मिले। भवानन्द ने कहा—"भाई जीवानन्द, तुम्हारा व्रत सार्थक हुआ।"

जीवानन्द ने कहा—"भवानन्द, तुम्हारा नाम सार्थक हो!" इसके बाद लूट की रकम को यथा-स्थान पहुँचाने का भार जीवानन्द को सौंपा गया। वे अपने अनुचरों के साथ शीघ्र ही वहाँ से अन्यत्र चले गये। भवानन्द अकेले रह गये।

उन्होंने महेन्द्र से कहा कि यदि अपनी कुछ भलाई मेरे हाथों चाहते हो, तो मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें तुम्हारी स्त्री व कन्या से

मिला दूँगा। आगे-आगे भवानन्द चले और लाचार महेन्द्र भी उनके पीछे हो लिये। वे मन ही मन सोचते जाते थे कि ये तो अजीव तरह के डाकू हैं।

उस चाँदनी रात में दोनों व्यक्ति उस निस्तब्ध मैदान को पार कर चले। महेन्द्र चुप थे। भवानन्द ने महेन्द्र से बातचीत करने की बड़ी चेष्टा की, पर वे न बोले। लाचार भवानन्द आप ही आप गाने लगा :—

॥ वन्दे मातरम् ॥

सुजलां सुफलां मलयज—शीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्—वन्दे मातरम्
शुभ्र—ज्योत्स्ना पुलकित—यामिनीम्
फुल्ल—कुसुमित—द्रुमदल—शोभिनीम्
सुहासिनीम—सुमधुर—भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्—वन्दे मातरम्

—पूरा गीत लिखिए

—:०:—

महेन्द्र ने देखा कि डाकू गाते-गाते रोने लगा। विस्मित होकर उसने पूछा कि भाई आप लोग कौन हैं ?

भवानन्द—"हम लोग संतान हैं, माँ की संतान। हम लोग अन्य कोई माता नहीं जानते, जन्मभूमि ही हमारी माता है।"

महेन्द्र—"अच्छा तो सन्तान का काम चोरी-डकैती करके माँ की पूजा करना है ?"

भवानन्द ने बताया—"यह चोरी-डकैती करना नहीं है। हम राजा के द्वारा लिया हुआ राज्य-कर लूटते हैं। इसलिए कि

राजा को कर लेने का कोई अधिकार नहीं है।" और फिर कहा "महेन्द्रसिंह! तुम्हें देखकर मैंने समझा था कि तुममें भी कुछ मनुष्यत्व है, पर अब मालूम हुआ कि जैसे सब हैं, वैसे तुम भी हो। तुम केवल पेट पालने के लिए ही पैदा हुए हो। देखो, साँप पेट के बल रेंगता है उससे घटकर नीच जीव ही और कोई नहीं है। पर पैर तले दब जाने पर वह भी फन काढ़ कर खड़ा हो जाता है। पर क्या तुम्हारा धैर्य अब भी नष्ट नहीं हुआ? क्या मगध, मिथिला, काशी, काँची, दिल्ली, काश्मीर– किसी देश की ऐसी दुर्दशा हो रही है? क्या इनमें से एक भी देश के निवासी दाने-दाने को तरसते हुये घास, पत्ते, जंगली लताएं, सियार-कुत्ते का माँस और आदमी तक की लाश खाने को मजबूर हो रहे हैं? किस देश में प्रजा को द्रव्य रखने में भी कल्याण नहीं है? देवता की उपासना करने में भी कल्याण नहीं है? घर में बहू-बेटियों को रखने में कल्याण नहीं है? बहू-बेटियों के गर्भ धारण करने में कल्याण नहीं? उनके पेट चीर कर लड़के निकाल लिए जाते हैं। सब देशों के राजा प्रजा का पालन करते हैं, परन्तु हमारे राजा क्या हमारी रक्षा करते हैं? धर्म गया, जाति गई, मान गया और प्राण भी जाना चाहते हैं। इन नशाखोरों को भगाये बिना हमारी गति अब नहीं हो सकती। देखते नहीं हो, हम लोग संन्यासी हैं। इसी काम के लिये हम लोगों ने संन्यास ग्रहण किया है। काम पूरा होने पर हम लोग फिर गृहस्थ हो जायेंगे। हमारे भी पुत्र-कलत्र हैं।"

महेन्द्र—"तुम लोग तो इस बन्धन से मुक्त होकर माया का जाल काट चुके हो?"

भवानन्द—"सन्तान को झूठ नहीं बोलना चाहिए। मैं तुम्हारे सामने झूठी बड़ाई नहीं करूँगा। माया-जाल कौन काट सकता है? जो यह कहता है कि मैंने माया का फंदा काट दिया

है, उसे या तो माया व्यापी ही नहीं, अथवा वह बड़ा भूठा है, व्यर्थ की डींग मारता है। हम लोगों ने माया का फन्दा नहीं काटा है, केवल व्रत की रक्षा कर रहे हैं। क्या तुम भी सन्तान होना चाहते हो?"

महेन्द्र—"बिना स्त्री व कन्या का सम्वाद पाये मैं कुछ नहीं कह सकता।"

प्रातःकाल भवानन्द महेन्द्रसिंह को लेकर ब्रह्मचारी सत्यानन्द के पास उनके आनन्दमठ पहुँचे। ब्रह्मचारी ने महेन्द्र को जगद्धात्री माँ के विभिन्न स्वरूपों की मूर्तियाँ दिखाईं और उन्हें मातृ-सेवा-व्रत के लिए प्रेरणा दी। जब मठ के बाहर महेन्द्र की अपनी पत्नी व पुत्री से भेंट हुई, तो उन्होंने अपनी पत्नी की सहमति से घर लौटने का निश्चय किया और वे पद-चिह्न की ओर चल पड़े।

चलते-चलते वे एक वृक्ष के तले ठहर गये। दोनों ने अपनी-अपनी विपत्ति की कथा एक दूसरे को कह सुनाई। कल्याणी ने पति से कहा कि देवता जहाँ कहें, वहीं जाओ। मैं भी जहाँ मेरे देवता कहेंगे, वहीं जाऊंगी और उसने जहर की डिब्बी स्वामी को दिखाकर वहीं जमीन पर रख दी। फिर दोनों व्यक्ति भूत और भविष्य के विषय में बातें करने लगे। ध्यान बँट गया। लड़की ने खेलने-खेलते विष की डिबिया उठा ली। दोनों में से किसी ने न देखा। सुकुमारी ने डिब्बी खोल ली और जहर की गोली मुँह में रख ली। माँ देख कर घबड़ा गई। उसने किसी तरह गोली मुँह से निकाल कर बाहर फेंक दी। किन्तु थूक के साथ विष का कुछ अंश पेट में चला गया, अतएव विष के प्रभाव से वह बेहोश होने लगी। वह छटपटाने लगी और रोते-रोते एकदम बेसुध हो गई। तब कल्याणी ने स्वामी से कहा, "अब क्या देखते हो, देवताओं ने

सुकुमारी को बुला लिया ! वह जिस राह पर गई है, मुझे उस राह पर जाना है ।" यह कह कल्याणी उस विष की गोली को मुँह में डाल कर तुरन्त ही निगल गई। महेन्द्र रो पड़े, बोले—"हाय ! कल्याणी ! तुमने यह क्या कर डाला !" कल्याणी के कुछ उत्तर नहीं दिया, स्वामी के पैरों की धूल माथे चढ़ाकर बोली—"स्वामी अब बातें करना व्यर्थ है, मैं तो चली ।" 'हाय ! कल्याणी ! यह तुमने क्या कर डाला ।' कह कर महेन्द्र जोर-जोर से रोने लगे। कल्याणी ने बड़े ही धीमे स्वर में कहा—"मैंने जो कुछ किया है, अच्छा ही किया है। तुच्छ नारी के कारण तुम्हें देवता के कार्य से विमुख होना पड़ता। मैंने देवता की बात टाल देनी चाही थी, इसमें मेरी लड़की के प्राण गये। अधिक अवज्ञा करती तो कदाचित् तुम्हें ही खोना पड़ता !"

महेन्द्र ने रोते हुए कहा—"मैं तुम्हें कहीं रख आता। जब हम लोगों का कार्य सिद्ध हो जाता, तब फिर तुम्हें लेकर सुख से जीवन बिताता। कल्याणी ! तुम्हारे ही दम तक तो मेरा दुनिया से नाता था। तुमने आज यह क्या कर डाला ? जिस हाथ के बल पर मैं तलवार पकड़ता, वही हाथ तुमने आज काट डाला। तुम्हारे बिना अब मैं व्यर्थ हूँ।"

इधर सुकुमारी ने एक बार वमन किया। उसके बाद वह कुछ संभल गई। उसके पेट में इतना विष नहीं पहुँचा था, जिससे जान निकल जाती, पर उस समय महेन्द्र का ध्यान उसकी ओर नहीं था। वे कन्या को कल्याणी की गोद में रख, दोनों का गाढ़ अलिंगन कर रोने लगे। उसी समय जंगल के भीतर से मृदु पर मेघ की तरह गम्भीर शब्द सुनाई दिये—

हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !

और न जाने किसने वहाँ आकर उन्हें अपनी छाती से लगा

लिया। फिर तो दोनों व्यक्ति उसी अनन्त की महिमा से अनन्त अरण्य में, उस अनन्त पथ-गामिनी के शरीर के सामने बैठे हुये अनन्त भगवान का नाम ले-लेकर पुकारने लगे। पशु-पत्ती चुप हैं। पृथ्वी शोभामयी हो रही है। वह स्थान और समय इस परम संगीत के लिये पूर्ण रूप से उपयुक्त थे, सत्यानन्द महेन्द्र को गोद में लेकर बैठ गये।

इधर राजधानी के हर गली-कूचे में हलचल सी मच गई। खबर फैल गई कि जो सरकारी खजाना कलकत्ते को चालान किया गया था, उसे संन्यासियों ने लूट लिया। संन्यासियों को पकड़ने के लिए बहुत से सिपाही और भालावरदार छोड़े गये। कुछ ने पहुँचकर महेन्द्रर और सत्यानन्द को पकड़ लिया और बिना कुछ कहे सुने चुपचाप उन्हें बाँध कर ले चले। कल्याणी की लाश और नन्हीं सी लड़की बिना किसी रक्षक के वहीं पेड़ तले पड़ी रह गई। महेन्द्र ने छुटकारे की कुछ चेष्टा की, तो उनके हाथ-पैर बाँध दिये गये। फिर वे दोनों निश्चेष्ट सिपाहियों के पीछे-पीछे जाने लगे। ब्रह्मचारी ने सिपाहियों से आज्ञा लेकर मृदु स्वर में गाया:—

धीर समीरे तटिनी तीरे बसति वने वर नारी।
माँ कुरु धनुधर गमन विलम्बन मति विधुरा सुकुमारी।

शहर में आने पर दोनों व्यक्ति कोतवाल के सामने हाजिर किये गये और फिर भयानक कारागार में भेज दिये गये।

सत्यानन्द और महेन्द्र के पीछे-पीछे जीवानन्द आ रहे थे। वे महाप्रभु के सब इशारे समझते थे। उनका गान सुन कर वे समझ गये कि नदी के किनारे कोई औरत विपत्ति में पड़ी है। यह सोच वे नदी के किनारे-किनारे चलने लगे। एक वृत्त के पास पहुँच कर उन्होंने देखा कि एक मरी हुई स्त्री और एक जीती-जागती लड़की है। उन्होंने अनुमान लगाया कि ये

महेन्द्र की पत्नी व पुत्री हैं। लड़की जीवित थी, इसलिये उसकी जान उन्होंने पहिले बचाना आवश्यक समझा। लड़की को गोद में लेकर वे घने जंगल में घुस गये और जङ्गल पार कर वे एक छोटे गाँव भैरवीपुर या भुरईपुर में पहुँचे। वहाँ उनकी बहिन निमी रहती थी। निमी का एक लड़का होकर मर गया था, इसलिये जब जीवानन्द ने यह बच्ची निमी को दी, तो उसके मातृत्व को बड़ा सुख मिला। उसने बच्ची को जी से चिपटा लिया। निमी के यहाँ ही जीवानन्द की पत्नी शान्ति रहती थी। जीवानन्द व्रत वश शान्ति से नहीं मिलना चाहते थे, लेकिन बहिन के अनुरोधवश उन्हें मिलना पड़ा। उन्होंने शान्ति को गले लगा लिया और उसके कंधे पर सिर रख बड़ी देर तक चुप रहे। फिर लम्बी सांस लेकर बोले-"हाय, मैंने क्यों मुलाकात की।"

शान्ति—"क्यों की ? इससे तुम्हारा व्रत भंग हो गया।"

जीवानन्द—"हुआ करे, इसका प्रायश्चित भी तो है। फिर तुम्हें विपन्नता की, असहायता की हालत में नहीं देख सकता। मैं अब लौट कर नहीं जाऊँगा।" शान्ति ने कहा—"छिः, तुम पुरुष होकर ऐसी बातें करते हो ? तुम अपना वीर धर्म कदापि न छोड़ो। हाँ, एक ही भिक्षा मांगती हूँ—मुझ से मिले विना प्रायश्चित न करना।"

जीवानन्द ने वचन दिया और ब्रह्मचारी के बारे में आशंकित मठ लौट आये।

यहाँ भवानन्द ने मठ में वेश-परिवर्तन किया और मुगल नवजवान के वेश में घोड़े पर सवार नगर की ओर चले। मार्ग में कल्याणी पड़ी दीखी। परीक्षा से उन्हें मालूम हुआ कि अभी सांस बाकी है। उन्होंने उसका उपचार किया और उस अधमरी देह को घोड़े पर रख कर नगर की ओर चले।

साँझ होते होते समस्त सन्तान-सम्प्रदाय में यह बात फैल गई कि सत्यानन्द ब्रह्मचारी और महेन्द्रसिंह बन्दी होकर नगर के कैदखाने में बंद हैं। यह सुनते ही हजारों सन्तान मठ में एकत्र हुए और 'हरे मुरारे मधुकैटभारे' के उद्घोष के साथ शहर चल पड़े। वहाँ पहरेदारों को मार, दरवाजों को तोड़, महेन्द्र और ब्रह्मचारी को कैद से बाहर निकाल लाये। इसी बीच शासक ने उनके दमन के लिए सैनिक भेजे। वे सन्तान-सैनिकों के सामने न ठहर सके और भाग गये।

जीवानन्द की पत्नी शान्ति की मां बचपन में मर गई थी। जिन अवस्थाओं में शान्ति का चरित्र-गठन हुआ था, उनमें एक प्रधान यह है कि उसके पिता पंडित और अध्यापक थे। उनके घर में कोई स्त्री नहीं थी। शान्ति अपने पिता की पाठ-शाला में जाती और लड़कों के बीच उठती-बैठती, खेलती थी। लड़कपन से ही पुरुषों के संसर्ग में बैठने का पहला फल यह हुआ कि शान्ति ने पुरुषोचित आचरण ग्रहण कर लिये। और दूसरा फल यह हुआ कि पिताजी की पाठशाला में उसने शीघ्र ही बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसी बीच उसके पिता का देहान्त हो गया। शान्ति निराश्रय हो गई। उसका एक प्रिय सहपाठी जीवानन्द था, जो आगे चल कर सन्तान के सम्प्रदाय में जाकर मिल गया। जीवानंद ने शान्ति के साथ विवाह कर लिया, किन्तु विवाह के बाद भी शान्ति के पुरुषोचित आचरणों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ससुराल वालों ने उस पर डांट-डपट, मार-पीट शुरू कर दी और अत्याचारों से ऊब कर शांति एक दिन चुपचाप घर से बाहर हो गई। बाहर जाकर वह संन्यासियों के एक दल में सम्मिलि हो गई। इन संन्यासियों का काम दल बाँध कर सरकारी खजाना लूटना था। इन लोगों के बीच शान्ति ने घोड़े पर चढ़ने की विद्या

सीख ली और अस्त्र चलाने में निपुणता हाँसिल कर ली। किन्तु संन्यासियों की इस जमात में वह अधिक दिन नहीं रहने पाई। एक संन्यासी अध्यापक की कुदृष्टि से बचने के लिए उसने उनका साथ छोड़ दिया और फिर अपनी ससुराल लौट आई। ससुर का देहान्त हो चुका था और सास ने जाति-च्युति के डर से उसे घर में स्थान नहीं दिया। पति ने शान्ति की सारी कथा सुनकर उसके प्रति सहृदयता दिखाई। वे सत्यानन्द के शिष्यत्व में चले गये और अपनी पत्नी को अपनी बहिन निमाई के यहाँ छोड़ गये। पति के साथ अपनी पिछली मुलाकात में शान्ति के हृदय में न जाने कहाँ का परिवर्तन आ गया। अपनी नन्द की आँख बचा कर उसने अपनी नई साड़ी को गेरुये रंग में रंग लिया अपने सुन्दर केश काट डाले, और मृगछाला शरीर से लपेट कर जंगल में निकल गई।

वहाँ आनन्द मठ में सन्तानों के तीनों नायक—सत्यानन्द, जीवानन्द और भवानन्द अपने भावी कार्यक्रम पर विचार कर रहे थे। उन्हें क्षोभ था कि उनके देवता उनसे अप्रसन्न हैं, इसी लिए वे बार-बार अपने दुशमनों से हार जाते हैं। और सत्यानन्द समझा रहे थे कि युद्ध में तो हार-जीत लगी ही रहती है। यदि हम व्रत का पालन करते रहे, तो कार्य कभी न कभी सिद्ध होगा। फिर उन्होंने समझाया कि उनकी हार का कारण अस्त्र-शस्त्रों की कमी है और वे अस्त्र-शस्त्रों का कारखाना महेन्द्र के पदचिह्न ग्राम में स्थापित करना चाहते हैं। अपने दोनों शिष्यों को सत्यानन्द ने समझाया कि वे तीर्थ-यात्रा के बहाने अपने कारखानों की स्थापना के प्रयत्न के लिए जा रहे हैं। जाने के पहले वे नूतन सन्तानों को दीक्षित करेंगे। वे यह सूचना भी दे गये कि जब तक वे लौट न आयें, तब तक उनके शिष्य अपने किसी अपराध का प्रायश्चित न करें। उनके लौटने

पर ही प्रायश्चित हो।

जिन नये सन्तानों को दीक्षा दी जाने वाली थी, उनमें एक स्वयं महेन्द्र और दूसरा एक बड़ा ही नौजवान और सुन्दर पुरुष था। दीक्षा देने के पूर्व सत्यानन्द ने महेन्द्र को बताया कि सन्तान दो तरह के हैं। एक दीक्षित और दूसरे अदीक्षित। अदीक्षित सन्तान केवल युद्ध के समय सम्मिलित हो जाते हैं और फिर चले जाते हैं। जो दीक्षित हैं, वे ही सम्प्रदाय के कर्ता-धर्ता हैं और उन्हीं के द्वारा सम्प्रदाय का गुरुतर कार्य सम्पन्न होता है। इतनी बात समाप्त करके सत्यानन्द महेन्द्र को मठ के भीतर ले गये। उन्होंने ,महेन्द्र को दीक्षा दी और अन्त में उन्होंने अपने महत्वपूर्ण कर्त्तव्य के प्रति सजग किया।

जिस दूसरे शिष्य को दीक्षित करना था, वह और कोई नहीं स्वयं शान्ति थी, जो पुरुष का छद्म वेष धारण करके सत्यानन्द के सामने उपस्थित हुई थी। सत्यानन्द शान्ति के छद्म-वेष को पहचान गये। उन्होंने उसकी परीक्षा ली और यह जान कर कि वह जीवानन्द की स्त्री है, उसे मठ में रखने में आना-कानी की। किन्तु जब उन्हें विश्वास हो गया कि शान्ति जीवानन्द को प्रतिज्ञा-भ्रष्ट न करके उसे सन्तान-धर्मोचित कार्य-कलापों में प्रोत्साहित करेगी, तो उसे आनन्द मठ में रहने की आज्ञा मिल गई। वह रात में जीवानन्द के कमरे में ठहरी।

जीवानन्द ने नवीनानन्द नामधारी शान्ति को पहचान लिया। जीवानन्द का मन शान्ति के प्रति थोड़ा चंचल हुआ, किन्तु शान्ति दृढ़ प्रतिज्ञ थी। उसने जीवानन्द को उनके व्रत की याद दिलाई। परास्त होकर जीवानन्द ने अलग शैय्या बिछाई और उसपर सो गये।

ईश्वर की कृपा से १७७६ का साल समाप्त हो गया। बंगाल की पूरी जनसंख्या के छः आने मनुष्यों को (जो न जाने कितने

करोड़ रहे होंगे) यमपुर भेजकर वह दुष्ट संवत्सर आप ही काल के गाल में चला गया। सन् १७७७ साल में ईश्वर ने दया की, पानी अच्छा बरसा, पृथ्वी ने खूब अन्न उपजाया। जो लोग जीते बचे थे, उन्होंने पेट भर खाने को पाया। बहुतेरे लोग अनाहार या अल्पाहार के कारण रोगी हो गये थे। वे भर-पेट ठूँस-ठूँस कर खाने से ही मर गये। पृथ्वी तो शस्यशालिनी हुई, पर गाँव के गाँव खाली नजर आते थे। सुनसान घरों में केवल चूहे दंड पेलते नजर आते, या भूत-प्रेत फिरा करते थे। गाँव-गाँव में सैकड़ों बीघे जमीन बिना जोते-बोये ऊसर ही पड़ी रही, जिसमें जंगल सा बन गया। देश भर में जंगलों की भरमार हो गयी। जहाँ लहराते हुए हरे-भरे धान के खेत दिखाई देते थे, जहाँ असंख्य गायें भैंसे चरती नजर आती थीं, जो बाग-बगीचे गाँव के युवक और युवतियों की प्रमोद-भूमि थी, वे सब स्थान क्रमशः घोर जंगल होने लगे। एक वर्ष, दो वर्ष करते-करते तीन वर्ष बीत गये। जङ्गलों की संख्या बढ़ती ही चली गयी। जो स्थान मनुष्य के सुख का स्थान था, वहाँ नर-माँस-भोजी बाघ आकर हरिण आदि जानवरों का शिकार करने लगे। जहाँ सुन्दरियों की टोली महावर से रंगे हुए पैरों की पैजनियाँ बजातीं, हमजोलियों के साथ हँसी-ठठोली करतीं, इतराती और बतराती जाती थीं, वहाँ रीछों की माँद और अड्डे बन गये। जहाँ छोटे-छोटे बच्चे बाल-काल में संध्या समय खिले हुए चमेली के फूल की तरह प्रफुल्लित होकर हृदय को तृप्त करनेवाली किलकारियाँ सुनाया करते थे, वहाँ अब झुण्ड के झुण्ड मतवाले जङ्गली हाथी वृक्षों की डालें तोड़ते नजर आने लगे। जहाँ कभी दुर्गाजी की पूजा हुआ करती, वहाँ स्यारों की माँद हो गयी। जहाँ सावन में ठाकुरजी का झूला होता था, वहाँ आज उल्लुओं ने अपना अड्डा जमा लिया। नाट्य-भवन में दिन-दहाड़े काले नाग मेंढक खोजने लगे। बङ्गाल में आज

अन्न उपजा है, तो खानेवाले नदारद हैं; बिकने वाली चीजें पैदा हुई हैं, पर कोई खरीददार नहीं है। किसानों ने खेती की, पर रुपया नहीं पाया। इसीलिये वे जमींदारों को मालगुजारी न दे सके। राजा ने जमींदारों से मालगुजारी न पाकर उनकी जमींदारियाँ जब्त करनी शुरू कीं, इसलिये धीरे-धीरे जमींदार दरिद्र होने लगे। वसुमती ने खूब अन्न उपजाये, पर किसी को धन नहीं मिला—सबका घर धन से छूँछा ही नजर आने लगा। लूट-खसोट के दिन आये, चोर-डाकुओं ने सिर उठाये, सज्जन लोग डर के मारे घरों में छिप रहे।

सन्तान-सम्प्रदाय वाले सङ्गठन में लगे थे। वे गाँव-गाँव अपने दूत भेज कर अपनी शिष्य-परम्परा बढ़ाने में लगे हुये थे और कुशासन से त्रस्त जनता अधिकाधिक संख्या में सन्तानों की शिष्य-परम्परा में सम्मिलित होती जा रही थी। एक-एक दिन में सैकड़ों और एक-एक महीने में हजारों नये लोग आकर सन्तान बनते और भवानन्द के चरणों में सिर झुकाने लगे। ये सन्तान जहाँ राज-कर्मचारियों को देख पाते, वहीं उनकी मरम्मत करने लगते। कभी-कभी तो उनके प्राण ही ले डालते थे। राज्य-पुरुष इनका दमन करने के लिये फौजें रवाना करने लगे किन्तु उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। सन्तानों का बल-पराक्रम अमित था और वे अपनी 'हरिहरि' की ध्वनि के बीच अपने दुश्मन के दल को छिन्न-भिन्न कर डालते थे। यदि किसी सन्तान-दल को मुसलमान सैनिक परास्त कर डालता, तो उसी सम्प्रदाय का दूसरा दल वहाँ आ पहुँचता और जीतने वाले का सिर धड़ से जुदा कर हरि-हरि कहता हुआ निकल जाता था।

उस समय वारेन-हेस्टिंग्ज भारतवर्ष के गवर्नर जनरल थे। सन्तानों के दमन के लिए उन्होंने केप्टिन टामस को भेजा। किन्तु

असंख्य और अजेय सन्तानगणों के सम्मुख केप्टिन टामस के के कान बहरे हो गये।

केप्टिन टामस अपने घमण्ड में निर्भय होकर बंगाल के जंगलों में शिकार खेलते-खेलते नवीनानन्द रूपी शान्ति से मिले। शान्ति ने साहब का अच्छा खासा मजाक उड़ाया। जब वह जंगल से कुटी की ओर गई, तो जीवानन्द से उसकी बातचीत हुई। तब जीवानन्द ने कहा कि—"देखो शान्ति, एक दिन व्रत भंग हो जाने के कारण मेरे प्राण तो न्यौछावर हो ही चुके हैं, क्योंकि पाप का प्रायश्चित तो करना ही होगा। अब तक तो मैं कभी का प्रायश्चित कर चुका होता, पर तुम्हारे ही अनुरोध से नहीं कर सका। पर अब देखता हूँ कि बड़ी भारी लड़ाई शीघ्र ही छिड़ा चाहती है। उसी युद्ध-क्षेत्र में मुझे उस पाप का प्रायश्चित करना होगा।"

शान्ति ने उत्तर दिया—"मैं तुम्हारी धर्मपत्नी, सहधर्मिणी और धर्म की संगिनी हूँ। तुमने बहुत बड़ा धर्म का काम अपने सिर पर उठाया है। उसी में तुम्हारी सहायता करने के लिए मैं घर छोड़ कर यहाँ आई हूँ। मैं तुम्हारे धर्म की वृद्धि करूँगी। विवाह लोक-परलोक दोनों के लिए किया जाता है। हम अपना परलोक साधेंगे ही, इस लोक में भी हम एक दूसरे को प्यार करते हैं। इस से बढ़कर और क्या फल हमें चाहिये? बोलो! वन्देमातरम्!"

दोनों के सम्मिलित स्वर में वन्देमातरम् गान गूँज उठा।

भवानन्द ने अर्धमूर्च्छित कल्याणी को लेकर अपने दूर के रिश्ते की एक भाभी के यहाँ ठहरा दिया। वे कल्याणी के रूप पर आसक्त हो गये और येन-केन-प्रकारेण कल्याणी को अपनी ओर आकृष्ट करने के प्रयत्न करने लगे। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि अब महेन्द्रसिंह तुम्हें ग्रहण न करेंगे। वह इन्द्रियों का दास

हो चुका था और कल्याणी उसे व्रतोच्युत अधर्मी समझती थी। भवानन्द ने जब धीरानन्द से मुलाकात की, तो उसका भेद अगोपन हो गया। धीरानन्द ने कहा कि भवानन्द ने स्वामी सत्यानन्द का विरोध कर कल्याणी से शादी कर ली। भवानन्द को लगा कि धीरानन्द उसे विश्वास-घात का पाठ सिखा रहे हैं, इसलिये वह उन्हें मार डालने के लिए उतारू हो गया। धीरानन्द बेहताशा भाग चला। भवानन्द ने उसका पीछा नहीं किया। वे मठ में जाकर घने जंगल में चले गये। जंगल के एकान्त में भी उनका मन नहीं लगा। वे अस्थिर होकर डोलते रहे। सुबह होते-होते वे मठ पहुँचे, तो मालूम हुआ कि सत्यानन्द तीर्थ यात्रा से लौट आये हैं। सत्यानन्द के मन में एक बात रह-रह कर क्षोभ उत्पन्न कर रही थी और वह थी जीवानन्द के प्रायश्चित की। व्रत भंग के कारण यह आवश्यक था कि वे प्रायश्चित करें। किन्तु सत्यानन्द यह नहीं चाहते थे कि जीवानन्द व्यर्थ में ही प्राण दे दे। वे चाहते थे कि प्राण काम करके दिये जाँय। उन्होंने शान्ति से आग्रह किया कि जीवानन्द के प्राण बचाओ। अपनी भी प्राण रक्षा करो।

धीरे-धीरे यह समाचार सन्तानों के बीच फैल गया कि सत्यानन्द लौट आये हैं और उन्होंने सन्तानों को आदेश देने के लिए बुलाया है। दस हजार सन्तान चाँदनी रात में अपने स्वामी को सुनने को एकत्र हुये। सत्यानन्द ने उन्हें उत्तेजित भी किया, उद्बोधन भी दिया। किन्तु जिस समय ये लोग वन में एकत्र थे, टामस ने उन्हें जंगल में ही घेर कर मार डालने का विचार किया था। अंग्रेजों की तोपें धाँय-धाँय करके गरज उठीं, तो सन्तान लोग सावधान हुये। कुछ लोग शत्रुओं की खोज-खबर लेने के लिये भेजे गये, तो उन्हें उत्तर शत्रुओं के तोप, बन्दूक, गोलों से मिला। स्वामी सत्यानन्द ने उस दिन जीवानन्द को सन्तान-

सेना का सेनापति नियुक्त किया। जीवानन्द ने एक अर्थ भरी दृष्टि से नवीनानन्द की ओर देखा और दोनों ने समझा लिया कि यही अन्तिम मुलाकात है। नवीनानन्द ने सैनिकों को उद्‌बोधन देते हुये 'जय जगदीश हरे' गाया और हजारों भुजायें ऊपर उठ कर इस गीत को अकाश में प्रतिध्वनित करने लगीं। उस दिन जीवानन्द और भवानन्द दोनों प्रायश्चित करने को तैयार थे, किन्तु दोनों ने एक दूसरे को मना किया। माने दोनों ही नहीं, 'वन्देमातरम्' कह कर एक साथ अपने दुश्मनों पर टूट पड़े। सन्तान-सेना चारों तरफ से घिर चुकी थी। जीवानन्द घेरे से बाहर निकलना चाहते थे। भवानन्द ने दो हजार सैनिकों के साथ 'वन्देमातरम्' की गगन-भेदी जयध्वनि करते हुये अंग्रेजों के तोपखाने पर हमला किया। लेकिन अंग्रेजों की गोलन्दाज सेना के आगे वे अधिक टिक नहीं सके। इसी बीच जीवानन्द बाकी सेना को लेकर बाईं ओर के जंगलों की ओर धीरे-धीरे चले। टामस के सहायक ने और वाटसन ने उन्हें देख लिया। उन्होंने अपनी सीमा के एक दल को भवानन्द के साथ छोड़ कर दूसरों को इन भागने वालों के पीछे लगा दिया। घमासान युद्ध हुआ। बीस चुने हुए जवानों के साथ भवानन्द तो रण-क्षेत्र में रह गये; किन्तु जीवानन्द और धीरानन्द अपनी सेना के साथ वहाँ से निकल गये। भवानन्द ने दुश्मनों की तोपें हथिया लीं और फुर्ती के साथ शत्रु-सेना पर उन्हें दागना शुरू कर दिया। युद्ध में सन्तानों के शौर्य ने दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिये, किन्तु उस दिन भवानन्द रण-क्षेत्र में काम आ गये। मानो यह उनके व्रत भंग का प्रायश्चित हुआ। विजय तो मिली, किन्तु भवानन्द बलि हो चुके थे।

विजय का उत्सव मनाया गया। धूम-धाम से भवानन्द का अन्तिम संस्कार किया गया और फिर सब बैठ कर भविष्य के

सम्बन्ध में विचार करने लगे। सत्यानन्द ने सुझाया कि राजधानी पर कब्जा किया जाय और कब्जा हो जाने के बाद जिसे चाहें, राजमुकुट पहिना दिया जाय। जब सेना के अन्य लोग चले गये और केवल सत्यानन्द और महेन्द्र रह गये, तब सत्यानन्द ने महेन्द्र से कहा—"तुम सबने विष्णुमण्डप में शपथ करके सन्तान-धर्म ग्रहण किया था। भवानन्द और जीवानन्द दोनों ही ने अपनी" प्रतिज्ञा भङ्ग कर डाली।

"भवानन्द ने तो अपने कहे मुताबिक अपने पाप का प्रायश्चित कर डाला, अब मुझे डर है कि कहीं जीवानन्द भी प्रायश्चित करने के लिए अपने प्राण न दे डालें, पर मुझे एक ही बात का भरोसा है, जिससे वह अभी नहीं मर सकता। वह बात एकदम गुप्त है। अकेले तुम ने ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी तरह निबाही है। अब तो सन्तानों का काम हो गया। प्रतिज्ञा तो उसी दिन तक के लिए थी, 'जब तक सन्तानों का काम न हो जाता। अब कार्योद्धार हो गया है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम फिर से गृहस्थ बन जाओ।"

महेन्द्र की आँखों से लगातार आँसू बहने लगे। वे बोले—"महाराज! अब मैं किसको लेकर फिर से गृहस्थ बनूँ? स्त्री ने प्राण दे ही दिये, कन्या का कुछ पता ही नहीं कि किधर गई। अब मैं उसे कहाँ से ढूँढ़ लाऊँ? आपने कहा था कि वह जीती है, इसीसे इतना भी जानता हूँ। और कुछ मुझे नहीं मालूम।"

तब सत्यानन्द ने नवीनानन्द को बुलाकर महेन्द्र से कहा—"देखो इनका नाम नवीनानन्द गोस्वामी है। ये बड़े ही पवित्रात्मा हैं और मेरे प्रिय शिष्य हैं। ये ही तुम्हें तुम्हारी कन्या का पता बता देंगे।" यह कह सत्यानन्द ने शान्ति को इशारे से कुछ कहा। उस इशारे को समझ कर शान्ति वहाँ से जाने लगी। यह देख महेन्द्र ने कहा—"अब तुमसे कहाँ देखा-देखी होगी?"

शान्ति ने कहा—"मेरे आश्रम में चलिए।" यह कह, शान्ति आगे आगे चली। महेन्द्र भी ब्रह्मचारी के पैर छू विदा मांग शान्ति के पीछे-पीछे चल कर उसके आश्रम में पहुँचे। उस समय रात बहुत बीत गई थी, तो भी शान्ति सोने न जाकर नगर की ओर चल पड़ी।

सबके चले जाने पर ब्रह्मचारी भूमि में माथा टेके हुये मन ही मन जगदीश्वर का ध्यान करने लगे। क्रम से सवेरा होने को आ गया। इसी समय न जाने किसने आकर उनका सिर छूकर कहा—"मैं आ गया!"

ब्रह्मचारी उठ खड़े हुए और सकपकाये हुए बड़ी घबराहट के साथ बोले—"आप आ गये! क्यों? किस लिए?"

आनेवाले ने कहा—"दिन पूरे हो गये।"

ब्रह्मचारी ने कहा—"प्रभो, आज तो क्षमा कीजिये। आगामी माघी पूर्णिमा के दिन मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।"

उस रात को वह प्रदेश हरि-ध्वनि से भर गया। सन्तानों के दल के दल जहाँ तहाँ स्वर से 'वन्देमारम्' या 'जगदीश हरे' गाते हुए घूमते दिखाई देने लगे। कोई शत्रु सेना का अस्त्र, कोई वस्त्र छीनने लगा। कोई मरे हुए शत्रुओं की लाशों को पैर से ठुकराते और तरह-तरह के उपद्रव मचाते थे। उसी एक रात में गाँव-गाँव में, नगर-नगर में कोलाहल घोर मच गया और किसी ने रोते हुए, किसी ने हँसते हुए वह रात बड़ी घबड़ाहट के साथ बिताई।

कल्याणी ने जब यह सब सुना, तो मन ही मन कहने लगी "जय जगदीश्वर! तुम्हारा कार्य सम्पूर्ण हो गया, अब आज ही मैं अपने स्वामी को देखने जाऊँगी। हे मधुसूदन आज तुम मेरे सहायक बनो?" अधिक रात बीतने पर वह शैय्या

छोड़ कर उठी और चुपचाप खिड़की खोल कर देखने लगी। फिर धीरे-धीरे गौरी देवी के मकान के बाहर आई। फिर उसने मन ही मन इष्टदेव को याद करके कहा, "प्रभो! ऐसा करना, जिसमें पदचिह्न पहुँच कर मैं उन्हें देख सकूँ।"

रास्ते की बाधाओं से लड़ती-पड़ती कल्याणी अपने गन्तव्य की ओर चली, किन्तु एक उद्धत विद्रोही दल के हाथ में पड़ ही गई और दो एक डाकुओं ने उसका पीछा भी किया। संयोग की बात कि नवीनानन्द के वेश में शान्ति वहाँ से आ निकली, उसने कल्याणी की रक्षा की और सुरक्षित ले जाकर उसे महेन्द्र को सौंप दिया। जीवानन्द ने अपने ऊपर उनकी पुत्री उन्हें दिला देने का दायित्व लिया और निमाई के यहाँ जाकर पुत्री को ले आये।

पदचिह्न के दुर्ग में सब एकत्र हुए, सब सुख में पगे हुए थे।

उत्तरी बंगाल से मुसलमानों का शासन धीरे-धीरे निकल गया था और अंग्रेज सन्तानों के उपद्रव से आशंकित थे। उन्हें पता चल गया था कि सन्तानों ने पदचिह्न में किला बनाया है और वहाँ खजाना और सिपहखाना बना रखा है। अँग्रेजी दस्तेदार एडवार्डिस ने पहले तो तय किया कि इस किले को हथिया लेना चाहिए, किन्तु बाद में उन अँग्रेजों ने एक बड़ी विचित्र चाल चली।

माघ की पूर्णिमा को अँग्रेजी पड़ाव से थोड़ी दूर एक विशाल मेला भरना था, जिसमें उस वर्ष विजय के आनन्द में उन्मत्त सभी सन्तान आवेंगे, शायद पदचिह्न के रक्षकगण भी। एडवार्डिस की योजना थी कि यह खबर फैलाकर कि अँग्रेज मेले पर हमला करेंगे, सन्तानों का ध्यान मेले की ओर फेर दिया जायगा और तब पदचिह्न के दुर्ग पर कब्जा करने में कठिनाई न होगी। उसका सोचना सच निकला, दुर्ग में थोड़े से सन्तानों को रख कर महेन्द्र

अधिकांश सैनिकों के साथ मेले में चले आये। जीवानन्द और शान्ति पहले ही दुर्ग छोड़ चुके थे। उनका विचार था कि माघी पूर्णिमा के पुण्य दिवस के अच्छे मुहूर्त में, पवित्र जल में प्राण-विसर्जन कर प्रतिज्ञा-भंग रूपी महापाप का प्रायश्चित करें। रास्ते में जाते-जाते उन्होंने सुना कि मेले में जमा हुए सन्तानों के साथ अँग्रेजों का युद्ध होगा। यह सुन कर जीवानन्द ने कहा, "तब चलो, हम झटपट वहीं चलें, युद्ध में प्राण दे देंगे।" फिर दोनों ने न जाने क्या सलाह की। इसके बाद जीवानन्द एक जंगल में छिप गये और शान्ति एक दूसरे जंगल में जाकर अद्भुत काण्ड रचने की तैयारी करने लगी।

शान्ति ने वैष्णवी का वेश धारण किया और अँग्रेजी पड़ाव की राह ली। वहाँ जाकर उसने अँग्रेजी फौज का हाल मालूम किया। फिर मेजर साहिब को विश्वास दिला कर कि सन्तानों की खबर लाकर वह उन्हें देगी, कप्तान लिंडले को घोड़े से गिरा कर आप बिजली की तरह उस पर सवार हो जंगल में जाकर जीवानन्द से मिली। जीवानन्द ने उसे सत्यानन्द को खबर देने भेज दिया और वह आप महेन्द्र को होशियार करने चल पड़ा।

जीवानन्द ने ज्योंही महेन्द्र को खबर दी, तुरही बजा कर उन्होंने अपनी समस्त सेना एकत्र कर ली। एकत्र सेना जीवानन्द को देख कर दुगने उत्साह से भर गई। घनघोर युद्ध हुआ। जीवानन्द और महेन्द्र की फौजी टुकड़ियों के बीच अँग्रेजी सेना पड़ गई। इसी समय पच्चीस सन्तानों की सेना लिए हुए सत्यानन्द ब्रह्मचारी शिखर से समुद्र पात की तरह ऊपर आ पड़े और जैसे दो बड़े पत्थरों के बीच पड़ कर छोटी सी मक्खी पिस जाती है, वैसे ही दोनों सन्तान सेनाओं के बीच पड़ कर राजकीय सेना मसल गई। एक भी प्राणी जीता न बचा, जो वारेन

हेस्टिंग्ज के पास संवाद ले जाय।

जीवानन्द दुर्दम साहस के साथ लड़े। मृत्यु का भय भूल कर वे शत्रु के व्यूह में घुस गये और सन्तान सेना फिर उन्हें न देख सकी।

पूनों की रात है। रणक्षेत्र सुनसान हो चुका है। किन्तु जिन्दा और मुर्दों की, आदमियों और घोड़ों की आपस में रेला-पेली मची हुई है। उस माघ की पूर्णिमा की उजियाली रात में वह रणभूमि बड़ी भयंकर मालूम पड़ रही है। किसी को उधर जाने की हिम्मत नहीं पड़ती। किन्तु शान्ति ऐसे भयानक स्थान में इधर-उधर घूम कर अपने पति की लाश ढूंढ़ रही है। जब वह ढूंढ़ते-ढूंढते निराश हो जाती है, तो रोने लगती है। तभी कोई अपूर्व दर्शनीय जटाजूटधारी महापुरुष आकर उसे सान्त्वना देते हैं। वे जीवानन्द की लाश हो ढूंढ़ लाते हैं और उसका उपचार करके उसे सचेत करते हैं। सचेत होते ही जीवानन्द ने पूछा कि जीत किसकी हुई। शान्ति ने कहा, "तुम्हारी।" जीवानन्द को संतोष हुआ। इस बीच वे महात्मा अदृश्य हो गये। जीवानन्द और शान्ति ने निश्चित किया कि हिमालय पर कुटी बना कर दोनों जने देवता की अराधना करेंगे और यही वर मांगेंगे कि हमारी माता का मंगल हो।

इसके बाद दोनों जने हाथ में हाथ मिलाये उस आधी रात के समय उस बिखरी हुई चाँदनी में न जाने किधर गायब हो गये।

सत्यानन्द महाराज बिना किसी से कुछ कहे-सुने चुपचाप रणक्षेत्र से आनन्द मठ में चले। वे गहरी चिन्ता में डूबे हुए थे। इसी समय वे चिकित्सक महापुरुष वहाँ आ पहुँचे। वे सत्यानन्द के गुरु थे और सत्यानन्द को अपने साथ लेने आये थे। सत्यानन्द ने पूछा कि क्या मेरा कार्य समाप्त गया? क्या देश

में अपना राज्य स्थापित हो गया ? तो गुरु महाराज ने विशद व्याख्या द्वारा वताया कि अपना राज्य स्थापित करने के लिए सच्चे ज्ञान-संग्रह की आवश्यकता है : सनातन धर्म का पुनरुद्धार हुए बिना सच्चा ज्ञान सम्भव नहीं है।—धर्म लाभ के लिए महापुरुप सत्यानन्द को ले जा रहे थे। हिमालय के शिखर पर मातृभूमि है, वहीं माता की मूर्ति के दर्शन सम्भव हैं : यह कह कर महापुरुप ने सत्यानन्द का हाथ पकड़ लिया। ऐसा जान पड़ा, जैसे ज्ञान ने भक्ति का हाथ पकड़ लिया है, धर्म ने कर्म का हाथ थाम लिया हो, विसर्जन ने आकर प्रतिष्ठा को पकड़ रखा है। कल्याणी ने शान्ति को आ पकड़ा है।

सत्यानन्द प्रतिष्ठा है, महापुरुप विसर्जन है। विसर्जन आकर प्रतिष्ठा को ले गया।

---

*